पद घुंघरू बांध
(विभिन्न साधकों एवं प्रेमीजनों को लिखे गए 150 अमृत-पत्रों का संकलन)
Note: not be confused two different books:
Pad Ghunghru Bandh (पद घुंघरू बांध) - 150 letters written by Osho in Hindi to his disciples, friends and lovers. Note: missing 87th letter.
Pad Ghunghru Bandh (पद घुंघरू बांध) (2) - 20 Talks on Meera.

अनुक्रम

1/ अहं अज्ञान है--प्रेम ज्ञान है..8
2/ प्यास की पीड़ा ही अंततः प्राप्ति बन जाता है....................................8
3/ मृत परंपराओं व दासताओं से मुक्ति..9 4/ सत्य के पथ पर अडिग और अदम्य साहस आवश्यक...9 5/ नये जन्म की प्रसव-पीड़ा--रिक्तता व अभाव का साक्षात......................10 6/ मन के घास-फूसों की सफाई...11 7/ धन का अंधापन...12 8/ विश्वास-अविश्वास के द्वंद्व से शून्य मन.....................................12 9/ साधुता--कांटों में रह कर फूल बने रहने की क्षमता..........................13 10/ समय के साथ नया होना ही जीवन है...14 11/ ‘जो है’ उसी का नाम ईश्वर है..14 12/ असुरक्षा का स्रोत--सुरक्षा की अति आतुरता..................................15 13/ जीओ पल-पल न टालो कल पर..16 14/ ज्ञान-सूत्र--‘यह भी बीत जाएगा’..17 15/ प्रार्थना में शब्द नहीं--सुने जाते हैं भाव...............................18 16/ धर्म अभिव्यक्ति की सतत रूपांतरण प्रक्रिया...............................19 17/ ईर्ष्या के सूक्ष्म हैं यात्रा-पथ..19 18/ यही जवाब है इसका कि कुछ जवाब नहीं..20 19/ स्वीकार से--शांति, शून्यता और रूपांतरण......................................20 20/ प्रतीक्षारत तैयारी--विस्फोट को झेलने की...................................21 21/ अहंकार चुराने वाले चोर...22 22/ मिटने की तैयारी रख...22 23/ एक ही भासता है अनेक..23 24/ स्वीकार से दुख का विसर्जन..23 25/ जन्मों का अंधेरा और ध्यान का दिया...24 26/ प्रार्थना, श्रद्धा, समर्पण--बाह्य नहीं आंतरिक घटनाएं.............24 27/ आनंद का राज--न चाह सुख की, न भय दुख का..25 28/ शब्दों की यात्रा में सत्य की मृत्यु...26 1

29/ जीवन है--दुर्लभ अवसर...26 30/ एकमात्र संपत्ति--परमात्म--श्रद्धा...26 31/ प्रकाश-किरण से सूर्य की ओर...27 32/ सुवास--आंतरिक निकटता की..28 33/ ध्यान की सरलता--निःसंशय, निर्णायक व संकल्पवान चित्त के लिए....28 34/ अदृश्य, अरूप, निराकार की खोज..28 35/ आनंदमग्न भाव से नाचती, गाती, निर्भार चेतना का ही ध्यान में प्रवेश .... 29 36/ शून्य, शांत व मौन में--वर्षा अनुकंपा की......................................29 37/ चमत्कार--‘न-होने’ पर भी ‘होने’ का...30 38/ असार्थक की अग्नि-परीक्षा...30 39/ श्रद्धा के दुर्लभ अंकुर...31 40/ ध्यान में प्रभु--इच्छा का उदघाटन..31 41/ प्रतीक्षा में ही राज है परम उपलब्धि का......................................32 42/ स्वयं को तैयार करना--श्रद्धा से, शांति से, संकल्प से................32 43/ अभिशाप में भी वरदान खोजो..33 44/ अवलोकन--वृत्तियों की उत्पत्ति, विकास व विसर्जन का...................33 45/ सिद्धांत--क्रांति का अंत है...34 46/ प्रतिक्रियावादी तथाकथित क्रांतिकारी.......................................34 47/ सत्ता सदा ही क्रांति विरोधी है..35 48/ ध्यान है--द्रष्टा, अकर्ता, अभोक्ता रह जाना................................35 49/ समग्र जिज्ञासा में प्रश्न का गिर जाना.......................................35 50/ खोना ही ‘उसे’ खोजने की विधि है..36 51/ धैर्यपूर्वक पोषण--क्रांति के गर्भाधान का.................................36 52/ आत्म-विश्वास से खटखटाओ--प्रभु के द्वार को.................................37 53/ अनजाना समर्पण..37 54/ तुम्हारी समस्त संभावनाएं मेरे समक्ष साकार हैं........................38 55/ सूक्ष्म और अदृश्य कार्य...39 56/ प्रभु-मंदिर की झलकें--ध्यान के द्वार पर.....................................39 57/ अनुभूति में बुद्धि के प्रयास बाधक..39 58/ कामना दुख है, क्योंकि कामना दुष्पूर है......................................40 59/ प्रभु-कृपा की अमृत वर्षा और हृदय का उलटा पात्र.........................40 60/ जन्मों का पुराना--विस्मृत परिचय...41 61/ आनंद के आंसुओं से परिचय..41 62/ प्रभु-प्रेम को पागल मानने वाले लोगों से....................................42 63/ हृदय है अंतर्द्वार--प्रभु-मंदिर का...42

64/ पात्रता का बोध--सबसे बड़ी अपात्रता...43 65/ प्रमाद है भ्रूण-हत्या--विराट संभावनाओं की................................43 66/ चाह और अपेक्षा हैं जननी दुख की...44 67/ रूपांतरण के पूर्व की कसौटियां...44 68/ ज्ञानी का शरीर भी मंदिर हो जाता है..45 69/ भेद है अज्ञान में..45 70/ जीवन सत्य की ओर केवल मौन इशारे संभव..46 71/ स्वयं रूपांतरण से गुजर कर ही समझ सकोगी......................................46 72/ ज्ञान की गति है--अनूठी, सूक्ष्म और बेबूझ....................................46 73/ शुभ आशीषों की शीतल छाया में...48 74/ ऊर्जा-जागरण से देह-शून्यता..48 75/ संन्यास है--मन से मनातीत में यात्रा..49 76/ ध्यान--रूपांतरण की विधायक खोज...49 77/ द्वंद्व अज्ञान में ही है..50 78/ काम-ऊर्जा का रूपांतरण--संभोग में साक्षीत्व से.........................50 79/ आत्म-सृजन का श्रम करो..51 80/ मन का भिखमंगापन...51 81/ स्वयं का मिटना ही एकमात्र तप है...52 82/ वही दे सकते हैं--जो कि हम हैं..52 83/ स्वर्ग और नरक--एक ही तथ्य के दो छोर...53 84/ अधैर्य से साधना में विलंब..53 85/ नासमझदारों की समझ..54 86/ आदमी ऐसा ही जीता है--तिरछा-तिरछा...55 87/ Missing..56 88/ चाह से मुक्ति ही मोक्ष है...56 89/ अंतर-अभीप्सा ही निर्णायक है..56 90/ सत्य की खोजः लंबी यात्रा, अशेष यात्री..57 91/ अज्ञात को ज्ञात से समझने की असफल चेष्टा....................................58 92/ हर पल जीता हूं पूरा..58 93/ जिंदगी तर्क और गणित से बहुत अधिक है..59 94/ जीवन की धन्यता है--अभिव्यक्ति में--स्वयं की, स्वधर्म की..........60 95/ सम-चित्त में अद्वैत स्वरूप का बोध...61 96/ संकल्प पूर्ण हुआ कि शून्य हुआ..62 97/ साक्षी की प्रत्यभिज्ञा (रिकग्निशन) ही ध्यान है........................62 98/ साधन के मार्ग पर शत्रु भी मित्र है..63 99/ शांत साक्षीभाव में ही डूब..63

100/ आदमी की कुशलता--वरदानों को भी अभिशाप में बदलने की..................63 101/ गहरा खेल शब्दों का...64 102/ पवित्र प्रार्थना--आंसुओं में नहाई..65 103/ पीड़ा को भी उत्सव बना लेने की कला..66 104/ वही है, वही है--सब ओर वही है...66 105/ संकल्प के पंख--साधना में उड़ान..66 106/ मुझसे मिलने की निकटतम द्वार--गहरा ध्यान..................................67 107/ अंतः संन्यास का संकल्प...67 108/ क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा का रूपांतरण..........................68 109/ स्वरहीन-संगीत में डूबो...68 110/ समष्टि को बांट दिया ध्यान ही समाधि बन जाता है.........................69 111/ प्रभु द्वार पर हुई देर भी शुभ है..69 112/ समझ (अंडरस्टैंडिंग) ही मुक्ति है..69 113/ संन्यास--रूपांतरण की कमियां..70 114/ उसका होना ही उसका ज्ञान भी है..70 115/ जागे बिना सत्य से परिचय नहीं...71 116/ साधना को तो सिद्धि तक पहुंचाना ही है..71 117/ सदा स्मरण रखें--जीवन है एक खेल...72 118/ साहस--अज्ञात में छलांग का...72 119/ जिन खोजा तिन पाइयां...72 120/ अथक श्रम--और परीक्षा धैर्य की..73 121/ जीवन को उत्सव बना लेने की कला संन्यास है.................................73 122/ प्रभु-पथ से लौटना नहीं है...74 123/ स्वयं को खोकर ही पा सकोगे सर्व को..74 124/ शून्य में नृत्य और स्वरहीन संगीत..74 125/ ‘न-करना’ है करने की अंतिम अवस्था..75 126/ अहंकार की सीमा...75 127/ स्वयं को समझो...75 128/ एकमात्र यात्रा--अंतस की..76 129/ पर करो--कुछ तो करो..76 130/ पहले समझो ही...76 131/ अति सूक्ष्म हैं--अहंकार के रास्ते...77 132/ अपनी चिंता पर्याप्त है...77 133/ फूल, कांटे और साधना..78 134/ जीवन है एक चुनौती..78 135/ छलांग--बाहर--शरीर के, संसार के, समय के.......................................78

136/ स्वयं की खोज ही संन्यास है...79 137/ पागल होने की विधि है यह--लेकिन प्रज्ञा में..............................79 138/ प्रभु-प्रकाश की पहली किरण..80 139/ अस्वस्थता को भी अवसर बना लो...80 140/ दिन-रात की धूप-छांव में स्वयं को भूल मत जाना...........................80 141/ नियति का बोध परम आनंद है...81 142/ स्वनिर्मित कारागृहों में कैद आदमी...81 143/ समय रहते जाग जाना आवश्यक है...81 144/ अमूर्च्छा का आक्रमण--मूर्च्छा पर..82 145/ कुछ भी हो--ध्यान को नहीं रोकना है..82 146/ देखो स्थिति और हो जाने दो समर्पण...83 147/ नाचो--गाओ और प्रभु की धुन में डूबो..83 148/ आनंद है महामंत्र...84 149/ जीवन नृत्य है...84 150/ पद घुंघरू बांध...85

1/ अहं अज्ञान है --प्रेम ज्ञान है

प्रिय चंदना,

प्रेम। पत्र मिला है। हृदय जब तक प्रेम से झंकृत न हो, तब तक एक रिक्तता और अभाव का अनुभव होता है। प्रेम के अतिरिक्त आत्मा की पूर्णता की अनुभूति और किसी द्वार से नहीं होती है। प्रेम के अभाव में आत्मा में क्या है? अहं और केवल अहं 'मैं' और केवल 'मैं'। यह 'मैं' एकदम मिथ्या है। छाया की भी वह छाया है। उसकी उपस्थिति ही रिक्तता है। वह है, यही अभाव है। अहं की छाया प्रेम के प्रकाश में तिरोहित हो जाती है। और तब जो शेष रह जाता है, वही ब्रह्म है। प्रेम साधना है; ब्रह्म सिद्धि है।

मैं कहता हूंः प्रेम ज्ञान है। और अज्ञान क्या है? अहं अज्ञान है। और जब अहं ही ज्ञान की खोज करने लगता है तो वैसा तो महा अज्ञान बन जाता है। अहं की खोज से पांडित्य आता है। पांडित्य सूक्ष्मतम परिग्रह है। प्रजा का जन्म अहं से नहीं, प्रेम से होता है। इसलिए ही अहंकार प्रेम से सदा भयभीत रहता है। वह राग कर सकता है विराग कर सकता है। लेकिन, प्रेम? नहीं। प्रेम तो उसकी मृत्यु है।

प्रेम न राग है न विराग। प्रेम परम वीतरागता है।

प्रेम संबंध नहीं है। प्रेम है स्वयं की स्थिति। राग किसी से होता है। विराग भी किसी से होता है। प्रेम स्वयं में होता है। वह है सहज स्फुरणा--अकारण और अप्रेरित। और इसीलिए राग भी बांधता है, विराग भी बांधता है। प्रेम मुक्त करता है। प्रेम मुक्ति है।

धर्म क्या है?

संगठना या साधना?

धर्म संगठित होते ही धर्म नहीं रह जाता है। संगठन के स्वार्थों की दिशा धर्म की दिशा से भिन ही नहीं, विपरीत भी है। इसलिए धर्म के नाम पर खड़े संप्रदाय वस्तुतः धर्म की हत्या में ही संलग्न रहते हैं। धर्म है वैयक्तिक चेतना-जागरण। संप्रदाय है, भीड़ का शोषण। धर्म के लिए चेतना का भीड़ से, समूह से स्वतंत्र होना आवश्यक है; जबकि संप्रदाय चेतना की ऐसी स्वतंत्रता का शत्रु ही हो सकता है। संप्रदायों की दासता में केवल वे ही हो सकते हैं जो कि स्वयं के मित्र नहीं है। परतंत्रता शत्रु है। स्वतंत्रता ही मित्र है।

(प्रतिः साध्वी चंदना)

2/ प्यास की पीड़ा ही अंततः प्राप्ति बन जाता है

प्रिय चंदना,

प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर आनंदित हूं। मैंने पूना पहुंच कर तुम्हारी खोज की थी फिर ज्ञात हुआ कि अभी वहां नहीं पहुंच सकती हो। संभवतः पर्युषण में वहां आवूं तब मिलना हो सकेगा। तुम्हारी स्मृति तो मुझे सदा बनी रहती है। सत्य के अनुसंधान की इतनी अभीप्सा बहुत ही कम व्यक्तियों में होती है। और तुम्हारा हृदय की धड़कनों में तो बस सत्य की ही प्यास है। यह प्यास बहुत शुभ है क्योंकि अंततः उसकी पीड़ा ही प्राप्ति बन जाती है।

भूमि में दबा कोई बीज जिस भांति अंकुरित होने को व्याकुल होता है, जब प्राण परमात्मा के लिए भी उसी भांति आकुल हो उठते हैं तो फिर कोई बाधा बाधा नहीं रह जाती है। हममें प्यास की तीव्रता न होना ही बाधा है। वह प्यास तुममें हैं, इसलिए तुम्हारे प्रति मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं। स्मरण रहे कि मेरा सारा प्रेम और सारी प्रार्थनाएं उनके लिए हैं जो कि परमात्मा के प्याले हैं, और परमात्मा के लिए पागल हैं। उन थोड़े से पागलों में मैं तुम्हारी भी गणना करता हूं।

वहां सबको मेरे प्रणाम।

6-7-1966
(प्रतिः साध्वी चंदना)

3/ मृत परंपराओं व दासताओं से मुक्ति

प्रिय चंदना,
मैं बाहर था। लौटा हूं तो तुम्हारा पत्र मिला है। उसे पाकर आनंदित हूं। तुम्हारी छटपटाहट को अनुभव करता हूं। जिसके भी हृदय में सत्य की अभीप्सा जाग जाती है, उसे सत्य के बिना एक क्षण जीना कठिन हो जाता है। उसकी श्वास-श्वास व्याकुल हो उठती है और उसके प्राण अहर्निश ही परम सत्य के लिए आतुर रहने लगते हैं। इसे ही मैं उपवास कहता हूं। और, यही व्याकुलता उस संकट तक ले जाती है, जहां कि जीवन आमूलतः रूपांतरित हो जाता है।
सत्य की उपलब्धि के पूर्व एक बड़े संकट और संक्रांति से गुजरना पड़ता है। वही उसकी प्राप्ति का मूल्य है। सत्य तो बहुत लोग चाहते हैं, लेकिन मूल्य चुकाने कोई बिरला ही राजी होता है। मैं जानता हूं कि उस मूल्य को भी चुकाने की तुम्हारी तैयारी है और इसलिए ही बहुत आशा से भरा हुआ हूं।
बीज तैयार है। बोने भर की देर है और अंकुर निकलने शुरू हो जाएंगे। वह बीज ही अंकुर बनने को तैयार भी हो रहा है।
मनुष्य के मन पर हजारों वर्षों की मृत परंपराओं का बोझ है। यह बोझ उसे मुक्त नहीं होने देता। यह दासता बहुत गहरी है। इसके कारण ही वह उस स्वतंत्रता को अनुभव नहीं कर पाता है जो कि सत्य का द्वार है।
परमात्मा में जन्म के पूर्व सब भांति की दासता से मुक्त होना आवश्यक है, क्योंकि केवल मुक्त चित्त ही मुक्ति की अनुभूति करने में समर्थ हो सकता है।
वहां सबको मेरा प्रेम कहना।
तुम्हारे लिए भी बहुत बहुत प्रेम।

15-7-1966
(प्रतिः साध्वी चंदना)

4/ सत्य के पथ पर अडिग और अदम्य साहस आवश्यक

प्रिय चंदना,
मैं तुम्हारे मन में प्रकट हो रही उन्मुक्तता से कितना आनंदित हूं--
यह कैसे कहूं? किसी भी चित्त की कड़ियां टूटते देख कर मैं आह्लादित होता हूं, फिर तुम्हें तो मैंने सदा ही अपना जाना है। तुम्हारे गिरते बंधन भी मेरे हैं और तुम्हारी आत्मा को मिलता आकाश भी मेरा ही है। परमात्मा से एक ही प्रार्थना करता हूं कि वह तुम्हें बल दे और सत्य और स्वतंत्रता के मार्ग पर ले चले।
स्वतंत्रता से सत्य का जन्म होता है और सत्य से स्वतंत्रता आती है। साहस--अदम्य साहस और दुस्साहस के बिना सत्य के पथ पर चलना असंभव है।
सत्य के अनुसंधान में सदा स्वयं के अंतःकरण पर ही दृष्टि रखनी आवश्यक है।
समाज विचारणीय नहीं है। भीतर जो स्पष्टतया मार्ग प्रतीत हो, वही मार्ग है। किसी भी मूल्य पर उससे डिगना मंगलदायी नहीं है।
स्मरण रहे कि व्यक्ति अंततः स्वयं को छोड़ कर और किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है।
मैं तुम्हारे दूसरे पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूं।

मेरा प्रेम तुम्हारे लिए प्रार्थना बन कर बह रहा है।
प्रेम प्रार्थना है, क्योंकि उससे पवित्र और कुछ भी नहीं है।
वहां सबको प्रणाम।

17-8-1966

पुनश्चः
पत्र में तुमने लिखा है कि तुम सब बातें स्पष्ट कहना चाहती हो। कहो मुझसे नहीं तो किससे कह सकोगी।
विचार परिवर्तन के आस-पास चिंता है, यह भी लिखा है।
यह स्वाभाविक है। लेकिन उससे स्वयं चिंतित मत होना। वरन प्रसन्न होना। उसे शुभ मानना। अस्पताल में जब कोई व्यक्ति स्वस्थ होने लगता है, तो दूसरे अस्वस्थ व्यक्ति उसका स्वागत नहीं कर पाते हैं। न ही कारागृह में छूटते कैदी से अन्य कैदियों को आनंद होता है। फिर विचार की रुग्णता तो और भी गहरी है और विचार के कारागृह की दीवालें तो और भी मजबूत होती हैं! दासों ने स्वतंत्र--आत्म व्यक्तियों को कभी भी पसंद नहीं किया है। उसकी उपस्थिति मात्र उनके लिए अपमान और आत्मग्लानि बन जाती है। छोटे व्यक्तियों के बीच इसीलिए, बड़ा होना बड़ा जोखिम का काम है।
मेरे लिए भी तुमने चिंता की है। उसमें झलक आए प्रेम को मैंने अनुग्रह
से स्वीकार किया है। लेकिन, मेरे संबंध में कोई कैसी धारणा बनाता है, इसकी फिक्र मैंने ही कभी नहीं की तो तुम तो करना ही नहीं। मैं औरों से मुक्त हूं। उनका आदर-अनादर, उनकी प्रशंसा-निंदा कुछ भी मुझ तक नहीं पहुंचती है। और इसीलिए तो आनंदित हूं। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी मुझ तक नहीं पहुंचती है। और इसीलिए तो आनंदित हूं। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी मेरे लिए नहीं है।
और विश्वविद्यालय छूट गया है। ताकि वृहत्तर विश्व का हो सकूं।
सच ही हो सकूं--इसके लिए कामना करना। प्रेम। बहुत प्रेम।

5/ नये जन्म की प्रसव-पीड़ा--रिक्तता व अभाव का साक्षात

प्रिय चंदना,
प्रेम। पत्र मिला है। तुम्हारे हृदय में जिज्ञासा की नई-नई तरंगें उठते देख कर मैं आनंदित हूं। जीवन जड़ता नहीं है। जीवन को अविच्छिन्न प्रवाह है। लेकिन चित्त जड़ है। वह अतीत और मृत है। उसके कारण ही जीवन में भी गतिरोध आ जाते हैं और वही बांध बन कर जीवन सरिता को छोटे-छोटे डबरों में बदल देता है। चित्त की इन दीवारों को रोज ढहाते चलना जरूरी है। स्मृति और संस्कार के मृत अवरोध-तत्व रोज जलाते चलना आवश्यक है। उनकी राख में से ही, जीवन की अखंड धारा उपलब्ध होती है। उसकी उपलब्धि ही आत्मा है। उसकी उपलब्धि ही आनंद है। और उसे पाकर स्वयं न हो जाना ही मोक्ष है।
अभाव का, किसी गहरी रिक्तता का तुम्हें अनुभव होता है, यह शुभ है; क्योंकि अभाव की यह पीड़ा ही नये जीवन के जन्म की प्रसव-पीड़ा बनती है। अभागे हैं वे जो अपनी क्षुद्र व्यस्तताओं में इस अभाव को ढांक लेते हैं क्योंकि इस भांति वे स्वयं की आत्मा को ही नहीं जान पाते हैं। और अधिकतर जीवन अभाव को ढांकने में व्यर्थ होता है। किसी भी दौड़ में किसी भी तृष्णा में इस अभाव को ढांका जा सकता है। धन, पद, पुण्य या मोक्ष--कुछ भी हो स्वयं की रिक्तता को ढांक देती है। संसार या संन्यास कोई भी वासना उस पर आवरण बन जाती है। और स्मरण रहे कि आवरणों से अभाव मिटता नहीं, मात्र भूला ही रहता है। हर मृत्यु उसे पुनः उघाड़ देती है और तब फिर उसे ढांकने के लिए नये चक्र का प्रारंभ हो जाता है। इसीलिए तो मृत्यु का भय होता है; क्योंकि जिस सत्य को व्यक्ति ने जीवन भर ढांका मृत्यु उसका ही अत्यंत कष्टदायी साक्षात बन जाती है। इस सत्य को मृत्यु के पूर्व ही जो स्वयं ही जान लेता है, वह सौभाग्यशाली है। अभाव से भागता नहीं, वह मित्र है। उसमें जीना। उसमें

जीने से ही सरलता और अहंशून्यता आती है। और, शून्यता सत्य के लिए द्वार है। अभाव में जीने को ही मैं ध्यान कहता हूं।
प्रेम की अभिव्यक्ति कैसी हो, यह तुमने पूछा है। अहंकार में जो जीता है, उससे घृणा की अभिव्यक्ति होती है। अभाव में जो जीता है, उसकी श्वास-श्वास प्रेम बन जाती है।
‘मैं’ नहीं हूं, यह जान लेना ही प्रेम है।
यह तुमने क्या लिखा है ‘मैं प्रसन्न रहना जानती हूं। मैं प्रसन्न रहने का प्रयास करती हूं।’ नहीं! नहीं! वह प्रसन्नता शुभ नहीं है, जो कि प्रयास से आती है। मैं तो तुम्हारे हृदय में उस आनंद का जन्म चाहता हूं, जो अनायास ही बहता है। स्व-स्फूर्त ही हृदय की वीणा पर जो संगीत बजने लगता है, उसके अतिरिक्त शेष सब संगीत धोखा है। आनंद को खोजो--सहज आनंद को। अयासजन्य प्रसन्नता से तृप्त और तुष्ट मत हो जाना। ऐसी स्थितियां अंततः आत्मघात सिद्ध होती है।
वहां सबको मेरे प्रणाम।
और प्रेम। परमात्मा प्रेम दे प्रकाश दे यही प्रार्थना है।

10-9-1966

6/ मन के घास-फूसों की सफाई

प्रिय चंदना,
प्रेम। तुम्हारा पत्र मिले देर हो गई है। रोज ही लिखने की सोचता हूं
और नहीं लिख पाता हूं। बीच में बहुत दिन तो प्रवास में था। और लौटा हूं तो यहां बहुत व्यस्तता है।
निश्चय ही तुम प्रत्युत्तर की बाट जोहती होगी। मैं प्रतीक्षा करते तुम्हारे हृदय को देख पा रहा हूं।
किंतु प्रतीक्षा का भी अपना आनंद है।
सत्य के लिए तो प्रतीक्षा ही प्रार्थना है।
मैं उस दिन तुम्हें मिल कर बहुत आनंदित हुआ। बीती बार से बहुत अंतर पाया।
तुम जो खोज रही हो, उसे अवश्य ही पाओगी। पूर्व में सूर्योदय के लक्षण स्पष्ट हैं।
लेकिन जो मैं कह आया हूं, उसका ध्यान रखना। परमात्मा के बीज बोना है
तो मन की भूमि सब भांति के घास-फूस से मुक्त होनी चाहिए। शब्द और सिद्धांतों से चित्त जितना स्वतंत्र होता है, सत्य के लिए उसके द्वार उतने ही उन्मुख हो जाते हैं।
जिज्ञासा परतंत्र न हो तो परमात्मा से निकट और कुछ भी नहीं है। और मन पूर्णतया मौन हो तो वह तो मौजूद ही है।
सबको प्रणाम।

10-10-1966

7/ धन का अंधापन

प्यारी चंदना,
जिस मित्र ने मेरा साहित्य पढ़ना तू छोड़ सके तो हजार रुपया दान करने को कहा है उनसे कहना कि हजार रुपये तो बहुत कम हैं आप थोड़ी और हिम्मत बढ़ाएं तो परीक्षा हो सके कि आप कितना दान कर सकते हैं और चंदना कितने दान पर लात मार सकती है!

धन जिनके पास है, उन्हें धन के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। प्रेम के प्रति तो वे बिल्कुल ही अंधे होते हैं। और इसीलिए परमात्मा का द्वार भी उनके लिए बंद हो जाता है।
क्राइस्ट ने व्यर्थ ही तो नहीं कहा हैः ‘सुई के छेद से ऊंट भला निकल सके किंतु धनपति प्रभु के राज्य में प्रवेश नहीं पा सकता है।’
और ‘त्याग के धनियों’ की कथा भी भिन्न नहीं है। त्याग के सिक्कों के संग्रह से वे भी वही करना चाहते हैं जो कि चांदी के सिक्कों के मालिकों की आकांक्षा है लेकिन वे भी प्रभु के राज्य में प्रविष्ट नहीं हो सकते हैं। वहां तो उनका ही प्रवेश है जो कि सब भांति निर्धन हैं।
और यह जान कर मैं आनंदित होता हूं कि तू ऐसी ही निर्धन हुई जाती है।

7-10-1967

8/ विश्वास-अविश्वास के द्वंद्व से शून्य मन

प्यारी चंदना,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है। तूने पूछा हैः ‘विश्वास के अभाव में जीवन
के सामान्य व्यवहार भी नहीं हो सकते है तो आध्यात्मिक प्रगति विश्वास के बिना कैसे संभव है?’
पहली बातः संसार का सामान्य व्यवहार उतना ही असत्य है जितना कि विश्वास। सत्य के लिए नहीं, असत्य के लिए ही विश्वास की अपेक्षा होती है। सत्य तो स्वयं सिद्ध है। उसके होने के लिए किसी अन्य सहारे की आवश्यकता नहीं है।
दूसरी बातः आध्यात्मिक जीवन की यात्रा संसार व्यवहार से बिल्कुल विपरीत हैं। वह आयाम ही मूलतः भिन्न है। इसलिए एक का नियम दूसरे के लिए अनियम है। निद्रा और जागृति में जैसा भेद है, ऐसा ही भेद वहां है। संसार के नियमों के अनुसरण से नहीं, वरन उनसे मुक्त होकर आध्यात्मिक प्रगति होती है।
तीसरी बातः विश्वास-अविश्वास विचार-तल की घटनाएं हैं। विचार से ज्यादा उनकी गहराई न है, न हो सकती है। और आंतरिक में प्रवेश होता है निर्विचार से। इसलिए विचार को छोड़े बिना कोई मार्ग नहीं है।
चौथी बातः मैं जब विश्वास छोड़ने को कहता हूं तो इसका अर्थ यह नहीं है
कि तब मैं अविश्वास को पकड़ने को कहता हूं। अविश्वास भी विरोधी विश्वास है। उसे भी छोड़ना है। तभी चित्त मुक्त होता है। और मुक्त चित्त ही आध्यात्मिक जीवन का द्वार है।
पांचवीं बातः विश्वास अविश्वास का अभाव नहीं, अविश्वास का दमन मात्र है। विश्वास के पीछे इस लिए हमेशा अविश्वास मौजूद होता है। उसे ही दबाने और छिपाने को तो विश्वास को पकड़ा और पोषा जाता है। और इस भांति चेतना द्वंद्व से भर जाती है। यह द्वंद्व ही तनाव है। यह द्वंद्व ही अशांति है। और आध्यात्मिक प्रगति के लिए चाहिए निर्द्वंद्व भाव-दशा। इसलिए मैं विश्वास-अविश्वास के द्वंद्व को छोड़ने को कहता हूं। और यह स्मरण रहे कि चित्त के किसी भी द्वंद्व में एक को नहीं छोड़ा जा सकता है। वस्तुतः तो एक को छोड़ने और दूसरे को बचाने की चेष्टा से ही तो द्वंद्व पैदा होता है। या तो दोनों ही छोड़ते पकड़ते हैं या दोनों ही बच जाते हैं। क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विश्वास-अविश्वास, राग-विराग आदि ऐसे ही द्वंद्व हैं।
और तूने यह भी पूछा है कि स्व-ज्ञान को प्रकट करने की प्रक्रिया क्या है?
मन को समस्त क्रियाओं से मुक्त और शून्य कर लेना।
शून्य मन पूर्ण की अभिव्यक्ति की भूमिका है।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।

10-8-1968
(प्रतिः साध्वी चंदना)

9/ साधुता --कांटों में रह कर फूल बने रहने की क्षमता

प्यारी चंदना,
प्रेम। तेरा पत्र मिला। यह जान कर बहुत आनंदित हूं कि तू कांटों के बीच में रह कर भी फूल बने रहने की क्षमता नहीं खो रही है। मैं इसे ही साधुता का एकमात्र लक्षण कहता हूं। लेकिन जो वस्त्रों में ही साधुता जानते हैं, वे शायद इसे पहचान भी न सकें। पर उनकी पहचान की चिंता भी नहीं करनी है। उस पहचान का मूल्य दो कौड़ी भी नहीं है। दूसरों की पहचान, स्वीकृति-अस्वीकृति का नहीं, मूल्य है स्वयं की अपनी पहचान का। उस दिशा में तू निरंतर ऊपर उठती रहे, यही मेरे प्राणों की कामना है। इसलिए किसी के प्रति भूल कर भी कटु मत होना। वैसा कटुता उन्हें व्यर्थ ही मूल्य देना है। हां, उनकी कटुता के मध्य सदा मधुर जरूर बना रहना। वैसा मधुरता को अपना स्वभाव बना। वह किसी के प्रति नहीं, बस स्वयं का वैसा होना बने।
वहां सबको मेरे प्रणाम।
10-9-1968
(प्रतिः साध्वी चंदना)

10/ समय के साथ नया होना ही जीवन है

प्यारी चंदना,
प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
नये वर्ष की शुभ कामनाएं भी।
समय तो रोज नया होता है।
प्रतिपल नया है।
लेकिन आदमी पुराना ही बना रहता है।
नहीं--आदमी नया होता ही नहीं है।
समय नया होता जाता है और आदमी पुराना होता जाता है।
यही मृत्यु है।
समय के साथ नया होना ही जीवन है।
समय और स्वयं में जरा भी फासला नहीं चाहिए।
फिर ही उसका पता चलता है जो जीवन है--जो है।
और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि वह जीवन समय के अतीत है।
समय के साथ वर्तमान के साथ पूर्ण एकता सधते ही चेतना समय के अतीत हो जाती है।
नये वर्ष में तेरे लिए ऐसी ही अनुभूति की कामना करता हूं।
आर्या, सुमति को मेरे प्रणाम।
और सबको भी।

9-1-1969
(प्रतिः साध्वी चंदना)

11/ 'जो है' उसी का नाम ईश्वर है

मेरे प्रिय,

प्रेम। ‘जो है’ उसी का नाम ईश्वर है। जो उसका सहारा लेते हैं, वे भ्रम में हैं। क्योंकि वही है और हम नहीं है। इसलिए सहारा किसका और किसको? द्वैत की भाषा ही भ्रम है।
और रह गए ज्ञानी?
सो ज्ञानियों से ज्यादा अज्ञानी और कोई नहीं है।
ज्ञान का भाव भी अज्ञान का ही रूप है।
वह अज्ञान की अंतिम आत्म-रक्षा है।
वह जाए तो ही अज्ञान जाता है।
और फिर जो शेष रह जाता है, वह क्या है?
ज्ञान?
नहीं।
अज्ञान?
नहीं।
न वह ज्ञान है, न अज्ञान; क्योंकि न वहां ज्ञाता है न ज्ञेय।
फिर वह क्या है?
वह ‘क्या’ नहीं है--वह तो बस ‘है’।
और वही ईश्वर है।
‘ईश्वर है,’ ऐसा कहना पुनरुक्ति ही है।
क्योंकि ईश्वर का अर्थ ही है, वह जो ‘है।’
पूर्ण ही लीला है।
पूर्ण हुए कि फिर जो है, बस लीला ही है।

5-3-1969
(प्रतिः श्री पुष्कर गोकाणी, द्वारका, गुजरात)

12/ असुरक्षा का स्रोत--सुरक्षा की अति आतुरता

प्यारी मौनू,
प्रेम। जीवन को बचाने में ही लोग जीवन को गंवा देते हैं।
सुरक्षा की अति आतुरता ही असुरक्षा बन जाती है।
एक सम्राट स्वयं ही ज्योतिष का ज्ञाता था।
उसने जाना कि शीघ्र ही एक निश्चित तिथि पर एक विशेष घड़ी में उसके लिए कोई बड़ा दुर्भाग्य प्रतीक्षा कर रहा है।
उसने शीघ्र ही मजबूत चट्टानों से एक छोटा सा कक्ष निर्मित करवाया।
कक्ष में एक ही द्वार था; वह भी उसने दुर्भाग्य-आगमन के निश्चित दिन
पर स्वयं भीतर हो चट्टानों से ही भरवा दिया।
बाहर उस कक्ष के तोपें लगी थीं और विशाल सेना का पहरा था।
फिर जब निश्चित घड़ी निकट आने लगी तो सम्राट ने देखा कि एक छोटे छेद से सूर्य का प्रकाश भीतर आ रहा है।
उसने उसे भी मिट्टी से भर कर बंद कर दिया।
दुर्भाग्य के लिए इतना सा मार्ग भी तो छोड़ना खतरनाक है न!
लेकिन, उस सम्राट को पता नहीं था कि जहां दुर्भाग्य नहीं पहुंचता है, वहां सौभाग्य का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है।
और जहां मृत्यु की गति नहीं है, वहां जीवन का भी कोई उपाय नहीं है।
दुर्भाग्य की घड़ी बीत गई।
फिर दुर्भाग्य का दिवस भी बीत गया।
राजधानी में खुशियां मनाई जाने लगीं।
राजमहल स्वागत-संगीत से गूंजने लगा।
लेकिन, जब उस सुरक्षा-कक्ष का द्वार पुनः तोड़ा गया तो सम्राट वहां नहीं था, बस केवल उसकी मृत देह ही थी।

5-1-1971

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

13/ जीओ पल-पल न टालो कल पर

प्यारी मौनू,
प्रेम। जीवन को कल के लिए स्थगित करने से और कोई बड़ी भूल नहीं है।
क्योंकि, कल जीवन नहीं, मृत्यु है।
एक कृपण व्यक्ति ने सारा जीवन गंवा कर 3 लाख रुपये बचाए थे।
उसी आशा में गंवाया था उसने भी जीवन जिस आशा में कि सभी गंवाते हैं।
सोचा था उसने कि अंत में आनंद मनाऊंगा!
आह! मनुष्य-मनुष्य भी कैसा एक-सा ही सोचते हैं।
या कि सोचते ही नहीं इसलिए ही एक-सा सोचते हुए प्रतीत होते हैं?
पर जिस रात उस कृपण व्यक्ति ने तय किया कि अब कल से कमाई बंद करता हूं
और आनंद शुरू--उसी रात मौत ने उसका द्वार खटखटाया!
यद्यपि अभी भी वह कल पर ही टाल रहा था फिर भी मौत आ गई!
कृपण ने बहुत हाथ पैर जोड़े और प्रार्थना की कि कल भर तो और जी लेने दो लेकिन मौत ने उसकी एक न सुनी!
उलटे मौत ने उससे कहाः ‘जिसे जीना है, वह आज जीता है--जीने के लिए आज काफी है; हां, जिसे मरना ही है बस उसके लिए आज काफी नहीं है--वह सदा कल के लिए और कल में ही जीता है।’
कृपण ने कोई राह न देख अपनी सारी संपत्ति मौत के चरणों में रख दी और कहा, यह है मेरा जीवन--इसे ले लो और मुझे बस एक दिन जीने के लिए और दे दो? लेकिन मौत राजी न हुई!
जीवन के द्वार से हटाया जा सकता है, लेकिन मौत को नहीं।
जीवन को मिटाया जा सकता है, लेकिन मौत को नहीं।
तब कृपण ने कहा कि मुझे बस इतना ही समय दे दो कि मैं एक छोटा सा संदेशा उनके लिए लिख सकूं जो कि मेरी ही राह पर मौत के मुंह में जा रहे हैं।
मौत ने कहाः ‘यह तुम कर सकते हो, क्योंकि तुम्हें संदेश को कोई भी पढ़ेगा नहीं और यदि कोई पढ़ेगा भी तो समझेगा नहीं और यदि कोई समझा भी तो उस पर आचरण नहीं करेगा।’
फिर भी कृपण ने अपने खून से लिखाः ‘मनुष्यों! जीवन अमूल्य है। एक-एक पल अमूल्य है। मैं 3 लाख रुपये देकर भी एक घंटा नहीं खरीद पाया हूं। जीवन को जी लो जब समय है और कल पर जीना कभी न टालो--क्योंकि जीने को टालते-टालते मेरे हाथ में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी नहीं लगी है।’
इस संदेश को लिखे गए अनगिनत वर्ष बीत गए हैं; लेकिन न तो उसे कोई पढ़ता
ही है, न कोई समझता ही है और तब उस पर आचरण करने का तो सवाल ही नहीं उठता है।

7-1-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

14/ ज्ञान-सूत्र--‘यह भी बीत जाएगा’

प्यारी मौनू,
प्रेम। जीवन में छिपी है मृत्यु।
और मृत्यु में पुनः जीवन।
लेकिन, जीवन में मृत्यु कहां दिखती है?
और मृत्यु में जीवन की पदध्वनि कहां सुनाई पड़ती है? यही अज्ञान है।
सुख में छिपा है दुख।
दुख में छिपा है सुख।

लेकिन यह स्मरण कहां रहता है?
यही अज्ञान है।

एक सम्राट ने कभी देखा के सभी बुद्धिमानों को एकत्रित करके बड़ी कठिनाई में डाल दिया था।
क्योंकि उसने उनसे कहा था कि मुझे एक ऐसा ज्ञान-सूत्र दो जिससे कि मैं सुख में उदास और दुख में प्रफुल्लित हो सकूं?
बुद्धिमान मुश्किल में पड़े।
वर्ष भर का समय मांगा।
लेकिन, वर्ष बीतने को आया और कोई हल हाथ न लगा।
शास्त्र खोजे।
चिंतन किया--विचार किया।
पर नहीं कोई किनारा दिखाई पड़ा।
फिर थक गए और तब एक वृद्ध फकीर के पास गए।
वह फकीर उनकी हालत देख कर हंसने लगा।
उसने कहाः ‘नासमझो! तुम खुद ही दुखी हो और प्रफुल्ल नहीं हो पा रहे हो
तो तुम सम्राट को क्या और कैसे ऐसा ज्ञान-सूत्र दे सकोगे, जिसे पाकर कि सम्राट रात्रि में सुबह और सुबह में रात्रि का आगमन देख सके?’
और फिर इस वृद्ध फकीर ने उन्हें एक अंगूठी दी और कहा यह अंगूठी सम्राट
को जाकर दे दो।
उस अंगूठी पर ज्यादा नहीं बस चार ही शब्द लिखे थेः ‘यह भी बीत जाएगा। (दिस टु विल पास।)’
और सम्राट उस अंगूठी पर लिखे सूत्र को पढ़ कर हंसने लगा और फिर रोने लगा और फिर हंसने लगा और फिर रोने लगा!
क्योंकि, जब वह हंसा तो उसे याद आयाः ‘यह भी बीत जाएगा।’
और इसलिए वह रोने लगा!
लेकिन, जब रोआ तो उसे याद आयाः ‘यह भी बीत जाएगा।’
और इसलिए वह हंसने लगा!
10-1-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

15/ प्रार्थना में शब्द नहीं--सुने जाते हैं भाव

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम! प्रार्थना में शब्द नहीं--सुने जाते हैं भाव।
वह नहीं पहुंचता है प्रभु तक जो कि मुखर है--वरन वह पहुंचता है जो कि मौन है।
शब्दों की सतह के नीचे जो सरकता रहता है, उस पर ही ध्यान होना चाहिए।
परिधि नहीं--स्वयं का केंद्र ही केवल परम अस्तित्व से संवाद करता है।

अत्तार ने लिखा है कि किसी मस्जिद के सामने एक पागल आदमी पड़ा रहता था।
मस्जिद में प्रार्थनाएं चलती तो भी वह कभी उनमें सम्मिलत नहीं होता था।
लोग उससे सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित होने को कहते भी तो वह हंसता और कहताः ‘तुम? और प्रार्थना? प्यारे! किसे धोखा दे रहे हो?’ इसीलिए, लोग उसे पागल समझने लगे थे!
आह! आदमी भी अपने बचाव के लिए क्या क्या नहीं करते हैं?
फिर स्वयं को पागल समझना कितना कठिन--और दूसरे को पागल समझना कितना आसान है!
यद्यपि जो स्वयं को पागल समझ सके केवल वही पागल नहीं है।

लेकिन, एक दिन किसी धार्मिक उत्सव पर लोग माने ही नहीं तो वह पागल भी प्रार्थना में सम्मिलित हुआ।
प्रार्थना शुरू हुई।
मौलवी प्रार्थना करवाने लगा।
लेकिन, वह पागल प्रार्थना की जगह जोर-जोर से बैलों जैसी आवाज निकालने लगा!
लोगों ने समझ लिया कि पागल और कर भी क्या सकता है?
पर प्रार्थना पूरी हो जाने पर उससे पूछाः ‘क्या तुम्हें परमात्मा में जरा भी श्रद्धा नहीं? यह कैसा अशोभन कार्य तुमने किया? बैलों जैसी आवाज निकालने की यहां क्या आवश्यकता थी?’
वह पागल हंसने लगा और बोलाः ‘परमात्मा से यहां किसे प्रयोजन है? और श्रद्धा यहां किसके हृदय में है? और प्रार्थना यहां कौन कर रहा था? रही बैलों जैसी आवाज--सो जब मौलवी ने बैल खरीदना शुरू कर दिया तो मैं प्रत्युत्तर देने के सिवाय और क्या कर सकता था?’
लोगों ने चकित ही मौलवी की तरफ देखा।
मौलवी ने सिर झुका लिया और कहाः ‘मैं जब प्रार्थना करवा रहा था तब अपने खेत के संबंध में सोच रहा था और फिर बैलों की मुझे जरूरत है सो मैं बैलों को खरीदने निकल गया था, तभी मैं चौंका कि मस्जिद में बैलों जैसी आवाज कहां से आ रही है--लेकिन तब भी मैं समझ न सका और न ही सचेत ही हो सका। मैं बिल्कुल पागल हूं।’
वह पागल फिर हंसने लगा और बोलाः ‘इस गांव में कम से कम एक आदमी तो पागलपन के बाहर निकलने की स्थिति में आ गया है!’

14-1-1972
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

16/ धर्म अभिव्यक्ति की सतत रूपांतरण प्रक्रिया

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम! समय की सापेक्ष धारा में निरपेक्ष सत्यों की घोषणा ही धर्म की मृत्यु का कारण बनी है।
सत्य निरपेक्ष है।
पर उसकी कोई भी अभिव्यक्ति निरपेक्ष नहीं हो सकती है।
अभिव्यक्त होते ही सत्य भी सापेक्षिता के आयाम में प्रवेश कर जाता है।
और जहां सापेक्षिता है, वहां परिवर्तन है--वहां प्रवाह है।
क्योंकि वहां समय है।
काश! धर्मांध व्यक्ति इतना समझ सकें--तो फिर धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है।
अलबर्ट आइंस्टीन के एक स्वागत सभारंभ में जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा थाः ‘धर्म सदा सत्य है; जब कि विज्ञान सदा असत्य।’
स्वभावतः आइंस्टीन चिंता में पड़ा और फिर उसने पूछाः ‘आपका अर्थ क्या है?’
शॉ ने कहाः ‘धर्म के ठेकेदार एक ही झूठ को सदा दुहराते रहते हैं--इसलिए धर्म सदा सत्य है। और उन ठेकेदारों के न्यस्त स्वार्थों के कारण कोई उस झूठ को झूठ भी सिद्ध नहीं कर पाता है। और विज्ञान सदा असत्य है क्योंकि उसके सत्य प्रत्येक नई शोध के साथ रूपांतरित होते रहते हैं!’ धर्माभिव्यक्तियां भी जब तक सतत रूपांतरण से बचती रहेंगी तब तक जीवित धर्म का अस्तित्व असंभव है।
मृत्यु ही रूपांतरण के बाहर है।
जीवन नहीं।
जीवन तो रूपांतरण की प्रक्रिया का ही दूसरा नाम है।

25-1-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

17/ ईर्ष्या के सूक्ष्म हैं यात्रा-पथ

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। ईर्ष्या कुछ भी करा सकती है।
उसकी बेहोशी गहरी है।
और उसके यात्रा-पथ अति सूक्ष्म।

आस्कर वाइल्ड ने एक अदभुत कहानी लिखी हैः
जीसस को सूली दे दी गई थी।
अंधेरी रात ने पृथ्वी को घेर लिया था।
अरिमाथिया निवासी जोसेफ हाथ में मशाल लेकर काम से घर के बाहर निकला था।
राह के किनारे उसने एक सुंदर युवक को नग्न छाती पीटते और रोते देखा।
उसने अपने शरीर में कांटों से घाव बना लिए थे और माथे पर कांटों का एक ताज पहना रखा था।
जोसेफ ने दया के स्वर में उस युवक से कहाः ‘निश्चय ही मैं तुम्हारे गहन दुख से चकित नहीं हूं क्योंकि जीसस एक सत्पुरुष था। (आई डू नॉट वंडर दैट योर सॉरो इ.ज सो ग्रेट; बिकॉ.ज ही वॉज ए जस्ट मैन)’
किंतु उस दुखी युवक ने और भी दुखी होकर कहाः मैं उसके लिए नहीं रो रहा हूं। मैं अपने लिए रो रहा हूं। मैंने भी पानी को शराब में बदलता है। और मैंने भी कोढ़ियों को स्वस्थ किया और अंधों को आंखें दी हैं। मैं भी पानी पर चला हूं और मैंने भी लोगों से प्रेतात्माएं निकाल कर बाहर की हैं। और मरुस्थलों में जबकि पास में भोजन नहीं था मैंने भी भूखों को भोजन दिया है। और कब्रों में सो गए मुर्दों को मैंने भी जगाया है। उस आदमी ने--जीसस ने जो भी किया वह सब मैंने भी किया है। और फिर भी किया है। और फिर भी उन्होंने मुझे सूली नहीं दी? (एण्ड येट दे हैव नॉट क्रूसिफाइड मी?)’

27-1-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

18/ यही जवाब है इसका कि कुछ जवाब नहीं

मेरे प्रिय,
प्रेम। सवाल हो तो जवाब भी हो सकता है।
सवाल ही नहीं है।
प्रतीत होता है कि है।
फिर भी नहीं है।
इसलिए, जवाब खोजने जो गया है वह भटका।
सवाल ही खोजें--सवाल में ही खोजें।
सवाल है या नहीं--पहले यही खोजें।
और जिसने सवाल खोजा उसका सवाल गिर जाता है।
और फिर जवाब है।
सवाल के रहते जवाब नहीं है।
सवाल के गिरते ही जवाब है।
सवाल का गिरना ही जवाब है।
‘मेरा खत उसने पढ़ा, पढ़के नामावर से कहा।’

और मैं भी कहता हूं कि बिल्कुल ठीक कहा।
‘यही जवाब है इसका कि कुछ जवाब नहीं।’
लेकिन, ध्यान रहे कि यह जवाब है।

(प्रतिः श्री इंद्रराज आनंद, बंबई)

19/ स्वीकार से--शांति, शून्यता और रूपांतरण

मेरे प्रिय,
प्रेम। अस्वीकार में दुख है।
जो है--जैसा है--उससे संघर्ष में पीड़ा है।
और पीड़ा बहुत--और परिवर्तन जरा भी नहीं।
स्वीकार शांति है।
स्वीकार शून्यता है।
और, शांति रूपांतरण (ट्रांसफॉर्मेशन) है।
शून्य में नया जन्म है।
अब कब तक लड़िएगा स्वयं से?
ऊबिए भी!
छोड़िए भी!
और मैं कहता हूं कि जो लड़ कर नहीं मिला, वह हार कर मिल जाएगा।
लेकिन यह जीतने की विधि और व्यवस्था नहीं है!
इसलिए, जीतने के लिए मत हारिए।
बस, हारिए--बेशर्त।
और जीत उसका परिणाम (कांसिक्वेंस) है।

28-1-1971
(प्रतिः श्री इंद्रराज आनंद, बंबई)

20/ प्रतीक्षारत तैयारी--विस्फोट को झेलने की

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। कुछ करो नहीं बस देखो।
नाटक के एक दर्शक की भांति।
नाट्य-गृह में--पर नाटक में नहीं।
शरीर नाट्य-गृह है और तुम दर्शक हो।
ऊर्जा उठती है--ऊर्ध्वगामी होती है तो ऐसे ही आघातों से तन-तंतु कांप-कांप उठते हैं।
ऊर्जा अपना नया यात्रा-पथ निर्माण करती है तो आंधी में सूखे पत्तों
की भांति शरीर आंदोलित होता है।
फिर जैसे-जैसे नये प्रवाह-पथ निर्मित हो जाएंगे वैसे-वैसे ही शरीर की पीड़ा खो जाएगी।
फिर आज जो आघात जैसा प्रतीत होता है वही आनंद की पुलक बन जाता है--ऐसे आनंद की जो कि शरीर में घटित होता है पर शरीर का नहीं है।
और निकट है वह क्षण।
पर उसके पूर्व बहुत बार तूफान आएगा ऊर्जा का और चला जाएगा।
उफान उठेगा और शांत हो जाएगा।
इससे चिंतित मत होना।
क्योंकि, ऐसे ही विस्फोट (एक्सपलोसन) की तैयारी होती है।
गौरीशंकर के शिखर-अनुभव (पीक-एक्सपीरिएंस) के पूर्व अनेक छोटे-छोटे शिखरों के अनुभव से गुजरना पड़ता है।

उससे ही विराट को बूंद में झेलने की क्षमता निर्मित होती है।

29-1-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

21/ अहंकार चुराने वाले चोर

मेरे प्रिय,
प्रेम। चोर खोजे नहीं जाते।
न ही निमंत्रित किए जा सकते हैं।
चोर तो आते हैं।
द्वार खुला रखें--बस।
द्वार खुला हो तो स्वयं परमात्मा भी चोरी के लिए ललचाता है।
29-1-1971
(प्रतिः श्री इंद्रराज आनंद, बंबई)

22/ मिटने की तैयारी रख

प्यारी नीला,
प्रेम। प्रभु प्रकाश के रूप में तुझ पर उतर रहा है।
हृदय के द्वार खुले रख।
और भयभीत न होना।
प्रकाश के साथ एक हो जाना है।
यही साधना है तेरे लिए।
प्रकाश ही रह जाए और तू न रहे।
सागर ही बचे, बूंद नहीं।
ज्ञान ही बचे, ज्ञाता नहीं--ज्ञेय नहीं।
वही है साध्य।
संकल्प से, समर्पण पूर्वक आगे बढ़।
और मिटने की तैयारी रख।
क्योंकि, स्व का मिटना ही सर्व का पाना है।

29-1-1971
(प्रतिः श्रीमती नीला, विलेपार्ले, बंबई)

23/ एक ही भासता है अनेक

मेरे प्रिय,
प्रेम। एक ही भासता है अनेक।
दृष्टियों के कारण।
दृष्टि सृष्टि है।
वही है सत्य--वही है सुंदर--वही है शिव।
और उसमें नहीं, सदा ही देखने वाली आंखों में हैं।
और इसलिए वह तीनों में है और तीनों के पार भी है।
और इसलिए जिसे उसे उसकी समग्रता में अनुभव करना है, उसे समस्त दृष्टियों से मुक्त हो जाना होता है।
लेकिन तब शब्द उसे व्यक्त नहीं करते हैं--न सत्य, न सुंदर, न शिव।
फिर तो शून्य ही उसे व्यक्त करता है।
फिर तो मौन ही उसकी अभिव्यक्ति है।

29-1-1971
(प्रतिः श्री रजनीकांत, रोजकोट, गुजरात)

24/ स्वीकार से दुख का विसर्जन

मेरे प्रिय,
प्रेम। दुख को स्वीकार करें।
दुख से भागें नहीं।
जो दुख से भागता है, दुख उससे कभी नहीं भागता।
जो दुख से नहीं भागता है, दुख उससे भाग जाता है।
यही शाश्वत नियम है।
दुख से बचने के लिए ध्यान न करें।
ध्यान करें--ध्यान के लिए ही।
ध्यान के आनंद के लिए ही ध्यान करें।
और दुःख फिर खोजे से भी नहीं मिलेगा।

29-1-1971
(प्रतिः श्री दासभाई पटेल, विजापुर, जिला-महेसाणा, गुजरात)

25/ जन्मों का अंधेरा और ध्यान का दिया

मेरे प्रिय,
प्रेम। रूपांतरण की घड़ी निकट है।
सजग रहें--साक्षी रहें और शेष प्रभु पर छोड़ दें।
अंधेरा जन्मों-जन्मों का है फिर भी चिंता न करें क्योंकि वह अंधेरा ही है न?
दिये के जलते ही वह व्यवधान नहीं बन सकता है।
वह उसकी सामर्थ्य ही नहीं है।

29-1-1971
(प्रतिः श्री लाला सुंदरलाल जी, जवाहरनगर दिल्ली-6)

26/ प्रार्थना, श्रद्धा, समर्पण--बाह्य नहीं आंतरिक घटनाएं

प्रिय योग लक्ष्मी,
प्रेम। शब्दों में प्रार्थना नहीं है।
नहीं जुड़े हाथों में श्रद्धा है।
और नहीं झुके सिरों में समर्पण।
क्योंकि, शरीर आत्मा नहीं है।

एक मस्जिद की मीनार से भक्तों के लिए प्रार्थना की पुकार की जा रही थी।
परमात्मा का नाम सुबह भी सोए पड़े लोगों के कानों में गूंज रहा था।
और जो जाग गए थे, वे भी जागे हुए कहां थे?
एक फकीर मस्जिद के बार खड़ा हंस रहा था।
किसी अजनबी ने उससे पूछा कि मीनार से यह आवाज किस लिए लगाई जा रही है--यह क्या हो रहा है?

फकीर ने कहाः ‘उसके ही लिए तो मैं भी हंस रहा हूं। वह आदमी मीनार पर चढ़
कर एक ऐसा कार्य कर रहा है जिसका कि उसे कुछ भी पता नहीं है। जैसे कि कोई एक खाली डिब्बे को हिलाए और उसमें से आवाज के निकलने की आशा करे--ऐसा ही वह आदमी भी कर रहा है!

शब्दों में सत्य नहीं है।
शब्द खाली डिब्बों की भांति ही हैं।
प्रार्थनाओं में प्रार्थनाएं कहां है?
प्रार्थनाएं खाली डिब्बों की भांति ही हैं।
और आदमी प्रभु को पाना चाहता है?
ऐसे ही जैसे कि कोई खाली डिब्बे को हिलाए और उसमें से आवाज के निकलने
की आशा करे।

10-2-1971
(प्रतिः मा योग लक्ष्मी, बंबई)

27/ आनंद का राज--न चाह सुख की, न भय दुख का

प्यारी मौनू,
प्रेम। चाह नहीं जहां सुख की, वहां भय भी नहीं है दुख का।
सुख की चाह ही दुख के भय की जननी है।

ईसा गुजर रहे थे एक गांव से।
देखा उन्होंने राह के किनारे दीवार के सहारे बैठे कुछ अत्यंत दुखी लोगों को।
ऐसे थे वे संतापग्रस्त की जैसे मौत ही उनके सामने हो।
भय से कंपित, भय से पीले हुए--मरणासन्न।
ईसा ने पूछा उनसेः ‘यह हालत कैसे हुई तुम्हारी?’
उन्होंने कहाः ‘नरक के भय के कारण।’
और थोड़ा आगे जाने पर ईसा ने फिर कुछ लोगों को वैसी ही स्थिति में देखा।
आंखें उनकी पथरा गई थीं और भिन्न-भिन्न आसनों और मुद्राओं में वे ऐसे बैठे थे कि जैसे मर ही गए हों।
ईसा ने उनसे भी पूछाः ‘तुम्हारा क्या है दुख?’
बोले वेः ‘स्वर्ग की आकांक्षा!’
और आगे बढ़ने पर ईसा ने कुछ लोगों को वृक्षों की छाया में नाचते भी देखा।
आनंद मग्न--भाव विभोर
कौन सा खजाना मिल गया था उन्हें?
या किस नरक से बच गए थे वे?
या कौन सा स्वर्ग का द्वार खुल गया था उनके लिए?
उनके चेहरों पर चिह्न थे लंबी यात्रा के--लेकिन थकान नहीं थी, वरन उपलब्धि का विश्राम था।
और उनकी आंखों में तपश्चर्या का सौंदर्य था--लेकिन अहंकार की कोई भी रेखा न थी।
उनकी आत्माओं में आनंद की वर्षा हो रही थी और उनके चारों ओर किसी अलौकिक ही प्रकाश के आभामंडल थे।
ईसा ने उनसे भी पूछाः ‘मित्रो! तुम्हारे इस अपूर्व आनंद का राज क्या है--रहस्य क्या है?’
बोले वेः ‘आकांक्षा नहीं सुख की--भय नहीं दुख का। चाह नहीं स्वर्ग की-- चिंता नहीं नरक की। और जब से चाह और चिंता छूटी है तभी से जो है उसे ही जान कर और पाकर हम आनंदित और अनुगृहीत हैं।’

ईसा ने कहाः ‘यही हैं वे लोग जो कि सत्य को उपलब्ध होते हैं--यही हैं वे लोग जो कि सदा ही प्रभु की उपस्थिति में जीते हैं।’

10-2-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

28/ शब्दों की यात्रा में सत्य की मृत्यु

प्यारी मौनू,
प्रेम। थ्योडोर रेक ने अपने बचपन में सुनी कहानी स्मरण की है।
एक ग्रामीण बूढ़ा कर गया था।
उसके बेटे ने अपने स्वर्गीय पिता का चित्र बनवाया चाहा इसलिए वह शहर गया और एक चित्रकार को उसने अपने पिता के चेहरे, आंखों, ओठों, बालों आदि के संबंध में ब्योरे से बताया।
चित्रकार ने उसे दो सप्ताह बाद आकर चित्र ले जाने को कहा।
लेकिन, जब दो सप्ताह बाद वह चित्र लेने गया तो चित्र को देख कर जोर-जोर
से रोने लगा और बोलाः ‘मेरे गरीब पिता। इतने ही थोड़े समय में तुम कितने बदल गए हो? (पुअर फॉदर! हाउ आई मच हैव यू चेंज्ड इन सच ए शॉर्ट टाइम?)’ जीवन-सत्यों को बोलते समय मुझे भी यह कहानी बार-बार याद आ जाती है।
सत्य को शब्द दिया नहीं कि मैं कहता हूं अपने से ही ‘बेचारा सत्य! इतने
ही थोड़े समय में कितना बदल गया है।’

11-2-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

29/ जीवन है--दुर्लभ अवसर

प्यारी रमा,
प्रेम। अवसर है जीवन, स्वयं को पाने के लिए।
अनंत यात्रा के बाद मिला हुआ।
दुर्लभ है--लेकिन खोया जा सकता है।
और साधारणतः खोया ही जाता है।
सावधान हो कि जो साधारणतः होता है, वह न हो।
समय है अल्प और पाना है समयातीत को।
शक्ति है सीमित और पाना है असीम को।

12-2-1971
(प्रतिः सौ. रमा पटेल, अहमदाबाद)

30/ एकमात्र संपत्ति--परमात्म--श्रद्धा

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम। सफीक ने एक बाद अपने शिष्यों से कहाः ‘मेरी पूर्ण श्रद्धा है परमात्मा पर। और एक बार में सिर्फ एक पैसा साथ में लेकर तीर्थयात्रा पर निकल गया था। लंबी थी यात्रा लेकिन सब सकुशल पूर्ण हुआ और मैं वापस भी लौट आया और वह पैसा मेरे पास ही रहा और आज भी मेरे पास है।’
शिष्य आश्चर्य चकित हो एक दूसरे से चर्चा करने लगे।
उनकी आंखों में अपने गुरु के प्रति प्रशंसा के दिए जलने लगे।
21

लेकिन, यह देख सफीक अचानक उदास हो गया।
और फिर उसकी आंखें आंसुओं से भर गईं।
लेकिन, तभी एक युवक उठा और उसने सफीक से कहाः ‘यदि आपने साथ में एक पैसा ले लिया था तो आप कैसे कह सकते हैं कि आपकी श्रद्धा पैसे पर नहीं-- परमात्मा पर थी?’
सफीक के उदास आंसू खुशी के फूलों में बदल गए और उसने कहाः ‘मेरे प्यारे युवक! तुम ठीक कहते हो। जब प्रभु पर भरोसा है तो एक पैसा भी असंगत है। और एक पैसे पर भरोसा है तो प्रभु पर भरोसा नहीं है। और मैंने यह कहानी तुम्हारी परीक्षा के लिए ही कही थी। मेरे पास जो पैसा था, वह श्रद्धा का ही था। इसलिए ही तो वह खर्च न हो सका। संदेह के साम्राज्य भी जीवन की यात्रा में खर्च हो जाते हैं और श्रद्धा का एक पैसा भी बच जाता है। श्रद्धा जिनके पास नहीं, वे सदा ही भिखारी हैं। और श्रद्धा जिनके पास है उनके पास तो प्रभु का ही खजाना है--अकूत--अनादि--अनंत।’

12-2-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

31/ प्रकाश-किरण से सूर्य की ओर

मेरे प्रिय,
प्रेम। अंधेरे में जलता है जैसे दीया--ऐसे ही जलो।
विराट है अंधकार, पर निर्बल--नपुंसक।
छोटा है दिया--नन्हीं है ज्योति, पर सबल--सशक्त।
क्योंकि, प्रकाश की छोटी सी किरण भी अनंत सूर्यों को स्वयं में छिपाए है।
पहचानो--स्मरण करो और फिर तुम पाओगे कि जो अप्रकट था, वह प्रकट होने लगा है और जो मात्र संभावना थी वह वास्तविक हो रही है।

14-2-1971
(प्रतिः श्री बिनुकुमार एच. सुथार, चाचरिया, पाटण, उत्तर गुजरात)

32/ सुवास--आंतरिक निकटता की

प्यारी मृणाल,
प्रेम। नहीं--अब तू मुझे दूर नहीं पाएगी।
दूर तो हम केवल उनसे ही होते हैं जिनके कि हम निकट ही नहीं हो पाते हैं।
आंख करेगी बंद और पाएगी कि मैं पास ही हूं।
और इस निकटता की सुवास ही और है।
अर्थ भी और।
अभिप्राय भी और।
आयाम भी ओर।

14-2-1971
(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, 1024, सदाशिव पेठ, पूना)

22

33/ ध्यान की सरलता--निःसंशय, निर्णायक व संकल्पवान चित्त के लिए

मेरे प्रिय,
प्रेम। ध्यान में सफलता मिलते ही अतीत जन्मों की स्मृति-यात्रा पर भेज सकूंगा।
यह कार्य कठिन नहीं है।
असली कठिनाई ध्यान की ही है।
लेकिन, जितने संकल्प से ध्यान में लगे हैं, उससे आशा बंधती है कि वह भी कठिन सिद्ध नहीं होगा।
वैसे तो ध्यान भी सरल है।
लेकिन मनुष्य चित्त है संशय से कंपित, निर्णय से हीन, संकल्प में दरिद्र--इसलिए ही ध्यान कठिन हो जाता है।
निःसंशय हो आगे बढ़ें।
निर्णायक हो आगे बढ़ें।
संकल्प में समग्र हो आगे बढ़ें।
मैं सदा साथ हूं।

14-2-1971
(प्रतिः श्री राणूलाल सकलेचा, मेसर्स मिश्रीलाल राणूलाल सकलेचा, सदर बाजार, धमतरी, म.प्र.)

34/ अदृश्य, अरूप, निराकार की खोज

प्यारी प्रिया,
प्रेम। दृश्य भी अदृश्य ही है।
गौर से देख?
रूप भी अरूप ही है।
जरा गहरे देख?
आकार भी निराकार ही है।
फिर से देख?
अदृश्य दृश्य मालूम पड़ता है--है नहीं।
अरूप दिखाई नहीं पड़ता है--है वही।
निराकार कहीं भी मिलता नहीं--क्योंकि वही सब कहीं है।
14-2-1971
(प्रतिः मा योग प्रिया, आजोल, गुजरात)

35/ आनंदमग्न भाव से नाचती, गाती, निर्भार चेतना का ही ध्यान में प्रवेश

प्यारी प्रिया,
प्रेम। खुश हूं कि नाचती-गाती ध्यान के गहरे प्रयोग में प्रवेश कर रही है।
उदास है जिनकी चेतना वे ध्यान में प्रवेश करने में बड़ी कठिनाई पाते हैं--क्योंकि, ध्यान ही उनमें प्रवेश करने के लिए द्वार नहीं खोज पाता है। उदासी आध्यात्मिक रोग है।
और तथा-कथित आध्यात्मिक लोगों में बहु-प्रचलित!
उदास चित्त बन जाता है डबरा--अपने में ही बंद।
फिर सागर की यात्रा हो भी तो कैसे हो?
सागर के लिए तो चाहिए सरिता का आनंद-मग्न भाव।

तू सरिता की भांति ही दौड़ --गा और नाच।
सागर की यात्रा का रहस्य सरोवरों के पास नहीं सरिताओं के ही पास है।

15-2-1971
(प्रतिः मा योग प्रिया, आजोल)

36/ शून्य, शांत व मौन में --वर्षा अनुकंपा की

मेरे प्रिय,
प्रेम। प्रभु की अनुकंपा में विश्राम करो; थका-मांदा राही वृक्षों को घनी छाया में विश्राम करता है।
और स्वयं को मौन में डुबा दो ताकि उस मौन संगीत को सुन सको जो उसकी अनुकंपा से सदा-सदैव झरता रहता है।
ध्यान में बनना है दर्पण --शून्य, शांत, सोई झील की भांति --लेकिन जागते हुए ताकि उसकी अनुकंपा का आकाश अपनी सारी संपदा के साथ तुममें झांक सके।
इस गहरे ध्यान की अवधि में पाओगे तुम कि मेरी शुभकामनाओं के फूल प्रतिपल तुम पर बरस रहे हैं।

15-2-1971
(प्रतिः स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली)

37/ चमत्कार --'न-होने' पर भी 'होने' का

प्यारी उर्मिला,
प्रेम। सत्य की प्यास है जिन्हें --उन्हीं के लिए हूं मैं।
केवल उन्हीं के लिए।
स्वयं का होना हो गया पूरा।
वह यात्रा पूरी हुई।
सरिता खो गई सागर में।
बीज मिल गया मिट्टी में।
हो गया हूं शून्य।
देखोगी आंखों में मेरी तो जानोगी।
झांकोगी वहां आकाश में --अवकाश में।
लेकिन, फिर भी हूं।
और यही चमत्कार है।
सरिता जैसे सागर में है --ऐसे ही।
बांस की पोंगरी की भांति हूं --रिक्त, स्वयं में।
लेकिन, उस रिक्तता को प्रभु ने अपने स्वरों से भर दिया है।
और ऐसा होना नया नहीं है।
ऐसा ही सदा होता है।
जो स्वयं से भरे हैं, वे सत्य से खाली रह जाते हैं।
और जो खाली है, वे भर दिए जाते हैं।
15-2-1971
(प्रतिः श्रीमती उर्मिला खेतान, द्वारा --श्री ज्वाला प्रसाद खेतान, ओम इंजीनियरिंग कं. कूड़ा, गोरखपुर)

38/ असार्थक की अग्नि-परीक्षा

मेरे प्रिय,

प्रेम। नरक स्वर्ग के विपरीत नहीं है--वरन स्वर्ग का मार्ग है।
संसार भी शत्रु नहीं है--वरन मोक्ष का द्वार है।
अग्नि में डाला गया स्वर्ण भी तो अग्नि को मित्र नहीं मान पाता होगा
न?
पर अग्नि में ही स्वर्ण निखरता है और शुद्ध होता है।
जलता है केवल वही जो व्यर्थ है।
सार्थक तो सदा ही निखरता है।

15-2-1971
(प्रतिः श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित, उदयपुर, राजस्थान)

39/ श्रद्धा के दुर्लभ अंकुर

प्यारी मृणाल,
प्रेम। मुश्किल में तो पड़ेगी ही?
अज्ञात की यात्रा यात्रा कहां--बस छलांग है।
ज्ञात का पट छूटता है और दूसरे तट का कोई पता ही नहीं?
और यही आनंद भी है।
यही रहस्य भी।
तर्क यह करे भी तो कैसे करे?
संदेह सोचे भी तो कैसे सोचे?
बस श्रद्धा ही यह कर पाती है।
या चित्त की जिस दशा में यह हो पाता है उसे ही मैं श्रद्धा कहता हूं।
यह जानकर अति आनंदित हूं कि तुझमें श्रद्धा अंकुरित हुई है।
उसके ही लिए तेरी सारी पीड़ा थी।
अब एक नई ही मृणाल का जन्म हुआ है।
शायद यह खबर अभी तुझ तक न पहुंची है पर मुझ तक पहुंच गई है।

15-2-1971
(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, पूना)

40/ ध्यान में प्रभु--इच्छा का उदघाटन

प्रिय ब्रह्म भारती,
प्रेम। संन्यास है समर्पण--प्रभु में।
फिर उसकी मर्जी ही जीवन है।
लेकिन, उसकी मर्जी क्या है--यह खोजना एक गूढ़ कला है।
ध्यान के बाद वह भी सिखाऊंगा।
या यह भी हो सकता है कि ध्यान के बाद उसे सीखने की आवश्यकता ही न रहे।
क्योंकि, अकसर तो वह ध्यान से स्वतः ही फलित हो जाती है।

15-2-1971
(प्रतिः स्वामी ब्रह्म भारती, पाली, मारवाड़ जंक्शन, राजस्थान)

41/ प्रतीक्षा में ही राज है परम उपलब्धि का

प्रिय कृष्ण कबीर,
प्रेम। प्रतीक्षा में ही है राज (सीक्रेट) परमोपलब्धि का। क्योंकि, प्रतीक्षा समर्पण है।

क्योंकि, प्रतीक्षा श्रद्धा है।
क्योंकि, प्रतीक्षा प्रार्थना है।
प्रतीक्षा है अथक धैर्य--अथक संतोष--अथक आशा।
प्रतीक्षा परीक्षा भी है।
आकांक्षा की--अभीप्सा की।
बीज की भांति ही बाट जोहो।
अंधेरे में--आत्म-विश्वास से।
अंकुर फूटता ही है।
वृक्ष उगता ही है।
फूल खिलते ही हैं।

15-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद)

42/ स्वयं को तैयार करना--श्रद्धा से, शांति से, संकल्प से

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुम्हारी स्थिति मेरे ध्यान में है।
भय न करो और आगे बढ़ो।
भय के अतिरिक्त भय करने योग्य और कुछ भी नहीं है।
अनूठे अनुभव होंगे।
अपरिचित से परिचय होगा।
अनजान के द्वार निकट ही हैं।
तुम तैयार हुए कि वे खुले।
श्रद्धा से, शांति से, संकल्प से स्वयं को तैयार करना है।
और स्मरण रखो कि मैं सदा साथ हूं।

15-2-1971
(प्रतिः श्री माणकचंद लुणावत, फूल बाजार, जालना, महाराष्ट)

43/ अभिशाप में भी वरदान खोजो

प्रिय कृष्ण यशोधर,
प्रेम। संन्यास को समझो कीमिया (एलकमी) अभिशापों को वरदानों में रूपांतरित करने की।
जब भी दिखाई पड़े अभिशाप--दो पहले प्रभु को धन्यवाद और फिर खोजो उसमें वरदान।
अभिशाप के बीज में खोजते ही वरदान का अंकुर फूट आता है।
दुख में छिपा मिलता है सुख।
और अंधेरी रात में सुबह का उजाला ढंका मिलता है।

15-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण यशोधर, द्वारा--श्री दिलीप सावंत, 517, बुधवार पेठ, पूना-2)

44/ अवलोकन--वृत्तियों की उत्पत्ति, विकास व विसर्जन का

प्रिय कृष्ण यशोधर,
प्रेम। भीतर की आवाज पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान दो।

उसे सुनो एकाग्र होकर।
उसके द्वारा साक्षी जन्म लेना चाह रहा है।
क्रोध हो कि प्रेम--जैसे ही भीतर कोई कहेः ‘देख ले! यह है तेरा क्रोध!’-- वैसे ही शांत-एकाग्रता से देखने में लग जाना।
निश्चय ही देखते ही वृत्ति विलीन हो जाएगी।
तब वृत्ति को विलीन होते देखना।
विलीन हो गया देखना।
वृत्ति का उठना, फैलना, विलीन होना, विलीन हो जाना--जब चारों स्थितियां समग्र रूपेण देख ली जाती है तब ही वृत्तियों का रूपांतरण (ट्रांसफॉर्मेशन) होता है।
और चित्त-वृत्तियों का रूपांतरण ही निरोध है।
और ऐसे निरोध को ही पतंजलि ने योग कहा है।
योग द्वार है उसका जो कि चित्त के पार है।
और जो चित्त के पार है वही शाश्वत है, वही सत्य है।

15-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण यशोधर, पूना)

45/ सिद्धांत--क्रांति का अंत है

मेरे प्रिय,
प्रेम। क्रांति सिद्धांत नहीं है।
वरन, जीने का एक ढंग है।
क्योंकि, जहां सिद्धांत है, वहीं क्रांति का अंत है।
सिद्धांत जम गई क्रांति है; जैसे पानी बर्फ हो जाए।
सिद्धांत सदा जड़ है।
क्रांति सदा जीवंत है।
इसलिए, वास्तविक क्रांतिकारी को क्रांतिवादी होने का उपाय नहीं है!

15-2-1971
(प्रतिः श्री चंद्रकांत एन. पटेल, बड़ौदा, गुजरात)

46/ प्रतिक्रियावादी तथाकथित क्रांतिकारी

मेरे प्रिय,
प्रेम। क्रांति भी क्रांतिकारी नहीं है।
वह भी अब पिटी हुई बात है।
वह भी अब सुव्यवस्थित प्रतिक्रियावाद है।
क्रांति में भी क्रांति की जरूरत है।
इससे स्वभावतः क्रांतिकारी भी मुझसे नाराज होंगे।
और प्रतिक्रियावादी तो सदा से नाराज थे ही।
इस पर मैं खूब हंसता हूं।
जीवन के मार्ग अनूठे हैं।
आज जो प्रतिक्रियावादी (रिएक्शनरीज) हैं, वे ही कल क्रांतिकारी (रिवोल्यूशनरीज) थे।
और आज जो क्रांतिकारी हैं, वे ही कल प्रतिक्रियावादी हो जावेंगे!
दोनों में विरोध नहीं--वरन गहरा पारिवारिक संबंध है।
पारिवारिक ही नहीं--जैविक (बाइलोजिकल) भी है!
और मजा तो यह है कि क्रांतिकारी प्रतिक्रियावादियों के पिता है!

15-2-1971
(प्रतिः श्री चंद्रकांत एन. पटेल, बड़ौदा, गुजरात)

47/ सत्ता सदा ही क्रांति विरोधी है

मेरे प्रिय,
प्रेम। क्रांति सत्ता नहीं बन सकती है।
क्रांति की नियति सदा ही विद्रोह (रिबेलियन) है।
सत्ता बनते ही क्रांति प्रतिक्रियावादी हो जाती है।
क्योंकि सत्ता के निहित-स्वार्थ हैं।
सत्ता सदा ही क्रांति-विरोधी है--स्वरूपतः ऐसी अनिवार्यता है।
और क्रांति सत्ता-विरोधी है।
यह उसका आंतरिक-स्वरूप है।
यह अस्तित्वगत विरोध है और इसे न समझ पाने से बड़ी उलझनें पैदा होती हैं।
क्रांतिकारी को सत्ता का ख्याल ही छोड़ देना चाहिए।
क्रांतिकारी सत्ता के बाहर और सत्ता-विरोधी रह कर ही जीवन को गति दे सकता है।

15-2-1971
(प्रतिः श्री चंद्रकांत एन. पटेल, बड़ौदा, गुजरात)

48/ ध्यान है--द्रष्टा, अकर्ता, अभोक्ता रह जाना

मेरे प्रिय,
प्रेम। जो भी हो रहा है उसे दर्शक की भांति देखते रहो।
चित्त को समझो एक नाट्य-मंच।
अनुभवों का नाटक।
स्वयं बैठो दूर और देखो।
द्रष्टा बनो।
कर्ता नहीं।
भोक्ता नहीं।
यही ध्यान (मेडिटेशन) है।

15-2-1971
(प्रतिः श्री धनवंत सिंह ग्रोवर, द्वाराः श्री प्रतापसिंह, संतोखीसिंह, बाजार माइ सावन, अमृतसर, पंजाब)

49/ समग्र जिज्ञासा में प्रश्न का गिर जाना

प्रिय कृष्ण यशोधर,
प्रेम। ‘मैं कौन हूं?’ इस प्रश्न को उठने दो--प्राणों को इससे भर जाने दो।
यह जिज्ञासा जितनी गहरी उतरे उतनी ही शुभ है।
और उत्तर की शीघ्रता न करो।
मन के द्वारा दिए गए उत्तरों से सावधान भी रहना।
तुम्हें स्वयं ही उत्तर नहीं देना है।
उत्तर को आने दो।
दो नहीं, आने दो।

प्रश्न के रहते उत्तर नहीं आएगा।
प्रश्न भी अंततः बाधा है।
पर प्रश्न तब तक ही है जब तक समग्रता से नहीं पूछा गया है।
प्रश्न हुआ समग्र कि समाप्त हुआ।
और निष्प्रश्न चेतना ही उत्तर है।

16-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण यशोधर, पूना)

50/ खोना ही 'उसे' खोजने की विधि है

प्रिय चैतन्य भारती,
प्रेम। दूर नहीं खोजना है।
क्योंकि वह निकट है।
वस्तुतः तो खोजना ही नहीं है।
क्योंकि, वह खोजने वाले में ही है।
खोजना नहीं--खोना है।
या कि खोना ही उसे खोजने की विधि है?
खोओ और जानो।
खोओ और पाओ।

16-2-1971
(प्रतिः स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली)

51/ धैर्यपूर्वक पोषण--क्रांति के गर्भाधान का

मेरे प्रिय,
प्रेम। जानता हूं भलीभांति कि क्या मुझे करना चाहिए।
और वही कर भी रहा हूं।
लेकिन प्रत्यक्ष कार्य से कुछ भी नहीं हो सकता है।
परीक्षा के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।
क्रांति भी सीधी नहीं हो सकती है।
परंपराओं में अत्यधिक उलझाव के कारण।
घोषणा पूर्वक भी कुछ करना संभव नहीं है।
मात्र शहीद होने का मजा लेना हो तो बात दूसरी है!
अत्यंत धैर्य की आवश्यकता है।
और परोक्ष होने के साहस की भी।
शहीद होने के सतही रस से भी बचने की अत्यधिक जरूरत है।
स्थिति जटिल है--असाधारण रूप से जटिल।
इसलिए अत्यंत जटिल पगडंडियों से गुजरना पड़ेगा।
राजपथ से ज्यादा धोखा किसी और चीज में नहीं है।

16-2-1971
(प्रतिः श्री चंद्रकांत, एन. पटेल, बड़ौदा, गुजरात)

52/ आत्म-विश्वास से खटखटाओ--प्रभु के द्वार को

प्रिय आनंद अमृत,
प्रेम। अंधेरा सघन होता है सुबह-सुबह होने के पूर्व।

ऐसा ही अंधेरा तुम्हारे चारों ओर है।
ध्यान को गहरा करो ताकि सुबह के फूटने में सहायता मिले।
अंधेरे से निराश न होना।
वह तो केवल सुबह के निकट होने का आश्वासन है।
आशा से, आत्म विश्वास से खटखटाओ प्रभु के द्वार को।
संकल्प से आगे बढ़ो।
द्वार पर ही तो खड़े हो।
छोड़ो सब भय।
और आगे बढ़ो।
उत्तिष्ठत! जाग्रत! प्राप्य वरान्निबोधत!
उठो!
जागो!
और भगवान के द्वारा दिए वरदान स्वरूप इस जीवन को समझ लो।

16-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद अमृत, अहमदाबाद)

53/ अनजाना समर्पण

प्यारी मृणाल,
प्रेम। तू समर्पित करने का विचार कर रही है?
पागल है फिर!
क्योंकि, समर्पित तू हो चुकी है।
और स्वीकृति भी।
उसके चरणों में तेरा सिर रख गया है--जिसके चरणों को कि तू अभी भी खोज रही है।
और उसके हाथ तेरे सिर पर हैं--जिसके हाथों को कि तू अभी भी खोज रही है!
ऐसा अक्सर ही होता है।
जैसे कि अंधेरी अमावस की रात्रि में अचानक सूरज निकल आए तो आंखें प्रकाश को तो देख ही नहीं पाएंगी उलटे और भी बंद हो जाएंगी।
ऐसा ही तेरे साथ भी हुआ है।
या कि जैसे भिखारी के भिक्षापात्र में अचानक कोहेनूर आ जावे तो भी वह भिक्षा मांगे ही चला जावे!
कोहेनूर को पहचानने में भी तो समय लगता है न?

16-2-1971
(प्रतिः सौ. मृणालिनी जोशी, पूना)

54/ तुम्हारी समस्त संभावनाएं मेरे समक्ष साकार हैं

प्रिय कृष्ण कबीर,
प्रेम। तुम जो नहीं जानते तुम्हारे संबंध में--वह भी मैं जानता हूं। क्योंकि तुम भी स्वयं से कहां परिचित हो?
तुम्हारी संभावनाएं मेरे समक्ष साकार हैं।
तुम जो हो और जो हो सकते हो; वह सभी खुली किताब की भांति मैं पढ़ पाता हूं।
तुम्हारा भविष्य भी।
तुम्हारी नियति (डेस्टिनी) भी।
और शुभ हैं लक्षण।
इस जीवन में ही बहुत कुछ हो सकेगा।

जीवन-निधि को तुम निश्चय ही खोज पाओगे।
लेकिन, यह सुन शिथिल मत हो जाना।
यह जान आलस्य में न पड़ जाना।
अन्यथा सब खोया जा सकता है।
श्रेष्ठतम अवसर भी खोए जा सकते हैं।

16-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद)

55/ सूक्ष्म और अदृश्य कार्य

मेरे प्रिय,
प्रेम। बाह्य यात्राएं बंद कर रहा हूं।
लेकिन, जो सच ही पुकारेंगे उनके लिए अंतर्यात्राओं के द्वार भी खोल रहा हूं।
नहीं--वंचित कोई भी नहीं हो सकेगा।
तुम्हारे हृदय में आ जाऊंगा।
और तुमसे बोलूंगा।
और शायद जो तुम बाह्य-वाणी से भी भी न समझ पाए थे, वह इस अंतर्वाणी से समझ पाओगे।
सूक्ष्म को बहुत कहा स्थूल से।
अब सूक्ष्म को सूक्ष्म से ही कहना है।

16-2-1971
(प्रतिः श्री राजेंद्र, राजेंद्र बाइसिकिल-इंडस्ट्रीज, गिलरोड, प्लाट-नारायण दास, लुधियाना, पंजाब)

56/ प्रभु-मंदिर की झलकें--ध्यान के द्वार पर

प्यारी प्रिया,
प्रेम। प्रभु के द्वार से ही बदलाहट शुरू हो जाती है।
मंदिर से उठे पूजा के स्वर प्राणों को भरने लगते हैं।
वेदी पर जलते दिए आंखों पर किसी अज्ञात लोक के संदेश को प्रेषित करने लगते हैं।
चंदन की कुंआरी सुगंध नासापुटों में भर जाती है।
ऐसा ही ध्यान के द्वार पर भी होता है।
क्योंकि, असली मंदिर का द्वार तो वही है न?

16-2-1971
(प्रतिः मा योग प्रिया, विश्वनीड़, आजौल, गुजरात)

57/ अनुभूति में बुद्धि के प्रयास बाधक

प्रिय रजनी,
प्रेम। ध्यान तेरा रोज गहरा हो रहा है, यह जान कर अति आनंदित हूं।
बहुत से अनुभव होंगे--लेकिन उन्हें बुद्धि से समझने के प्रयास में मत पड़ना।
बुद्धि के प्रयास बाधा बन जाते हैं।

और न ही कोई अनुभव पुनरुक्त हो ऐसी वासना ही करना।
क्योंकि, ऐसी वासना भी बाधा बन जाती है।
जो हो उसके लिए बस प्रभु को धन्यवाद दे आगे बढ़ जाना है।

16-2-1971
(प्रतिः कुमारी रजनी केलकर, 'प्रभु छाया', 140, शनिवार पेठ, पूना-30)

58/ कामना दुख है, क्योंकि कामना दुष्पूर है

प्यारी रमा,
प्रेम। कामना स्वप्न-सर्जक है।
कामना काल्पनिक कारागृहों की निर्मात्री है।
कामना दुख है।
क्योंकि, कामना दुष्पूर है।
कामना से ऊपर उठे बिना न आत्मा है, न आनंद है।
कामना को बिदा कर।
स्वप्नों को छोड़।
स्वप्नों की जंजीरें सूक्ष्म हैं पर फौलाद से भी ज्यादा बांधने वाली हैं।

16-2-1971
(प्रतिः सौ. रमा पटेल, अहमदाबाद)

59/ प्रभु-कृपा की अमृत वर्षा और हृदय का उलटा पात्र

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। प्रभु की अमृत-वर्षा जब होती है तब ऐसी ही बाढ़ आती है।
उसके हृदय में कृपणता तो है ही नहीं न?
पर हम ही हैं अभागे कि कभी अपने हृदय के पात्र को सामने फैलाते ही नहीं हैं!
अहंकार संकोच से ही सिकुड़ा रहता है।
या दंभ से दबा रहता है।
या अज्ञान में ही भटकता रहता है।
संन्यास अहंकार का त्याग है--उसके समस्त स्थूल-सूक्ष्म रूपों में।
फिर स्वभावतः ही हृदय का पात्र प्रभु के समक्ष फैल जाता है।
और अमृत बरसने लगता है।
वह तो बरस ही रहा था--लेकिन हमारा हृदय पात्र उलटा था।

16-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, द्वारा--पुष्प कटपीस भंडार, फर्मः कालूराम पुष्प कुमार, जवाहर गंज, जबलपुर)

60/ जन्मों का पुराना--विस्मृत परिचय

प्यारी साधना,
प्रेम। तू पागल की पागल रही!
कहा तुझसे किसने कि तेरा-मेरा परिचय दो दिन का है?
जल्दी ही तू जानेगी कि तुझसे भूल हो गई है--या कि जान ही भी रही है?
इस पृथ्वी पर कुछ भी नया कहां है?

नये का भ्रम पुराने के विस्मरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
ध्यान में तो तू डूब ही रही है और इसलिए जल्दी ही अचेतन कक्ष--आलय-विज्ञान में भी पहुंच जाएगी जहां कि सदा-सदा की स्मृतियां निवास करती हैं।
चित्त के स्मृति-संग्रह से कुछ भी खोता नहीं है।
बस विस्मृत ही होता है और पुनः स्मरण किया जा सकता है।
पुनर्जन्म का सिद्धांत अनुमान नहीं है; वरन ऐसे ही पुनः स्मरणों की अनुभूत निष्पत्ति है।
इसीलिए तो दो-तीन दिन में तू इतनी निकटता अनुभव कर सकी--अन्यथा दो- जन्मों-में-भी तो निकटता नहीं जन्मती है।

17-2-1971
(प्रतिः सौ साधना बेलापूरकर, पूना)

61/ आनंद के आंसुओं से परिचय

प्यारी साधना,
प्रेम। आंसू दुख से ही तो नहीं आते हैं?
आनंद के भी आंसू हैं।
असल में कोई भी भाव अतिरेक में हो तो आंसुओं से बहने लगता है।
लेकिन चूंकि साधारणतः हमने केवल दुख का ही अतिरेक जाना होता है, इसलिए आंसू दुख के पर्यायवाची बन जाते हैं।
पर अब उस भ्रांति को तू छोड़।
और खुशी से रो, क्योंकि तेरी आंखें खुशी के आंसुओं से परिचित हुई हैं।

17-2-1971
(प्रतिः सौ. साधना बेलापूरकर, पूना)

62/ प्रभु-प्रेम को पागल मानने वाले लोगों से

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। लोग तो पागल समझेंगे ही!
वह उनकी सदा की परंपरा है।
पागलखाने में स्वस्थ होना जैसे खतरनाक है, वैसे ही दुखी लोगों में आनंदित होना है।
पर बांटो आनंद को--जो पागल कहें उन्हें भी आनंद दो--प्रेम दो।
वे समझेंगे--लेकिन देर से।
वह भी उनकी सनातन रीति है।
फिर उनका कोई कुसूर भी तो नहीं है--आंखें हैं बंद इसलिए प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता है!
और इसलिए जो कहता है कि उसे दिखाई पड़ता है--वह स्वभावतः पागल है।
यह उनकी आत्म-रक्षा का उपाय (डिफेंस मेजर) है।
दया के योग्य हैं वे।
उनके लिए प्रभु से प्रार्थना करो।

17-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

63/ हृदय है अंतर्द्वार--प्रभु-मंदिर का

प्रिय भगवती,
प्रेम। जो मिल रहा है उसे अनुग्रह से स्वीकार कर।
आनंद मिले तो भी मन संदेह करता है!
मन संदेह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
हृदय जब अमृत की वर्षा में स्नान करना है, तब भी मन संदेह उठाए चला जाता है।
मन पर से ध्यान (अटेंशन) हटा ले और हृदय पर ध्यान को जमा।
नाच और गा--हृदय के साथ।
धन्यवाद के भाव में जी।
तेरे लिए यही साधना है।
धीरे-धीरे चेतना (कानशयसनेस) बुद्धि से उतर हृदय में लीन हो जाएगी।
बुद्धि संसार का द्वार है।
बहिर्गमन का।
हृदय प्रभु-मंदिर के द्वार का नाम है।
अंतर्गमन का।

17-2-1971
(प्रतिः मा योग भगवती, बंबई)

64/ पात्रता का बोध--सबसे बड़ी अपात्रता

प्रिय भगवती,
प्रेम। ऐसा ही होता है--जब प्रभु-प्रकाश की झलक मिलती है तो अपनी अपात्रता का बोध होता है!
इसलिए ही तो जो पा लेते हैं, वे विनम्र हो जाते हैं।
प्रयास से नहीं मिलता है प्रभु।
प्रयास से तो बस हमारी प्यास ही जाहिर होती है!
न ही पात्रता से ही मिलता है।
क्योंकि, उसे पाने में पात्रता का बोझ ही तो सबसे बड़ी अपात्रता है।

17-2-1971
(प्रतिः मा योग भगवती, बंबई)

65/ प्रमाद है भ्रूण-हत्या--विराट संभावनाओं की

प्रिय भगवती,
प्रेम। जानता हूं कि तू जो कहना चाहती है, वह नहीं कह पाती है।
लेकिन, इससे चिंतित न हो क्योंकि जो तू नहीं कह पाती है, वह भी मैं सुन पाता हूं।
जो तेरे भीतर घटित हो रहा है, वह मुझे अज्ञात नहीं है।
उसकी खबर तुझसे भी पहले मुझे मिल जाती है।
जबी में भी वृक्ष को मैं देख पाता हूं।
आज में भी कल की छायाएं मैं पकड़ पाता हूं।
वे फूल जो तुझमें खिलेंगे उनके रंग मेरे सामने हैं और उनकी सुवास की सूक्ष्म-यात्रा को मैं अभी भी अनुभव कर रहा हूं।
जो आज वास्तविक है उसे देख कर मैं संन्यास नहीं देता हूं--मैं संन्यास देता हूं संभावनाओं को।
और तेरी संभावना विराट है।

लेकिन, यह जान कर प्रमाद में मत पड़ जाना।
क्योंकि, प्रमाद बड़ी से बड़ी संभावनाओं की भ्रूण-हत्या बन जाता है।

17-2-1971
(प्रतिः मा योग भगवती, बंबई)

66/ चाह और अपेक्षा हैं जननी दुख की

प्रिय योग तरु,
प्रेम। अपेक्षा दुख की जननी है।
जीवन से कुछ मांगा कि दुख आया।
मांग दुख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं लाती है।
उसके जाल में दुख ही फंसता है।
आशा की सुख की और परिणाम है दुख।
इसलिए जो जानते हैं वे मांगते ही नहीं है।
अपेक्षा को मर जाने दो।
अन्यथा अपेक्षा तुम्हें मार डालेगी।
जिसे हम साधारणतः जीवन कहते हैं, वह ऐसा ही क्रमिक आत्मघात है।
जागो और इस आत्मघात से ऊपर उठो।
जरा-सा ही ऊपर उठना है चाह के और आनंद के द्वार खुल जाते हैं।
और मैं जानता ही नहीं, वरन आश्वस्त भी हूं कि तुम चाह के ऊपर उठ सकती हो।
आलस्य के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

17-2-1971
(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

67/ रूपांतरण के पूर्व की कसौटियां

प्रिय योग तरु,
प्रेम। रूपांतरण की घड़ी में ऐसा सदा ही होता है।
हजार परीक्षाएं द्वार पर खड़ी हो जाती हैं।
प्रसन्नता से परीक्षाएं दो।
परीक्षा मित्र है।
क्योंकि, उससे गुजर कर ही साक्षात्कार संभव है।
परीक्षा को शत्रु मत समझ लेना।
उसे साधना का अंग ही जानो।
उसमें स्वयं को कसो और परखो।
अग्नि से गुजरो और भय जरा भी मन में न लाओ; क्योंकि जो जल जाएगा जानना
कि वह कचरा था और जो बच जाए वही तुम हो--वही स्वर्ण है।

17-2-1971
(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

68/ ज्ञानी का शरीर भी मंदिर हो जाता है

प्यारी मृणाल,

प्रेम! पूछा है तूने कि ज्ञानेश्वर के समाधिस्थ होने के समय निवृत्तिनाथ, सोपानदेव और मुक्ताबाई दुख से कातर क्यों हो उठते हैं जबकि वे सभी आत्मज्ञानी थे?
पागल! आत्मज्ञान व्यक्ति को पत्थर तो नहीं बनाता है?
आत्मज्ञान तो और गहरी संवेदनशीलता (सेंसिटिविटी) से भर देता है।
निश्चय ही फिर मृत्यु नहीं रह जाती है।
लेकिन, विदा-बेला में आंसुओं के अतिरिक्त और कुछ भेंट भी तो नहीं किया
जा सकता है?
आत्मा के लिए तो आत्म-ज्ञानी नहीं रोएगा--लेकिन शरीर भी क्या कम प्यार है? शरीर है मंदिर।
और फिर ज्ञानेश्वर का शरीर तो है महा-मंदिर।
यह मंदिर तो सदा के लिए खो रहा है--जिसमें वास था अमृत का, अमूर्त का,
वह सदा के लिए तिरोहित हो रहा है और ऐसे क्षण में निवृत्तिनाथ का सोपानदेव या मुक्ताबाई न रो पाते तो ही आश्चर्य था!
उनका दुख सहज है।
अदुख असहज होता।
और आत्म-ज्ञान कुछ भी करता है तो सहज कर जाता है।
सहजता ही आस्तिकता है।

17-2-1971
(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, पूना)

69/ भेद है अज्ञान में

प्यारी मृणाल,
प्रेम! माना कि देह क्षणभंगुर है।
फिर भी है तो प्रभु-प्रसाद ही न?
क्षण में भी तो वही है--क्षणभंगुर में तो वही है।
क्षण में भी शाश्वत है।
कण में भी अनादि-अनंत है।
और जब ऐसा ज्ञात होता है तो सब भेद गिर जाते हैं--क्षण के, शाश्वत के, अणु के, विराट के।
भेद है अज्ञान में।
ज्ञान अभेद है।
संसार और मोक्ष भी ज्ञान में दो नहीं है।
पदार्थ और परमात्मा भी परम-सत्ता में एक ही है।

17-2-1971
(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, पूना)

70/ जीवन सत्य की ओर केवल मौन इशारे संभव

प्रिय कृष्ण कबीर,
प्रेम! खुश हूं जान कर मेरे इशारे तुम समझ पा रहे हो।
जो भी जीवन में सत्य है, उसकी ओर केवल इंगित ही किए जा सकते हैं।
वे भी प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष ही।
शब्द में नहीं, मौन में ही।

17-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद)

71/ स्वयं रूपांतरण से गुजर कर ही समझ सकोगी

प्यारी मृणाल,

प्रेम! बाह्याभिव्यक्ति की समानता से भूल कर भी ज्ञानी और अज्ञानी की अंतर्दशाओं का अनुमान न लगाना।

ज्ञान के विस्फोट के साथ ही अंतर्तम में तो सभी कुछ रूपांतरित हो जाता है--लेकिन बाहर तो सब कुछ वैसा होता है जैसा कि पूर्व में था।

ज्ञानी भी चलता है, पढ़ता है, बैठता है, सोता है--बाहर तो सब वही है लेकिन भीतर जो चलता है, उठता है, बैठता है, सोता है वह अब वही नहीं है।

इस रूपांतरण को समझ पाने के लिए अनुमान (इनफरेंस) उपाय नहीं है।

इस रूपांतरण को समझ पाने के लिए तो स्वयं ही रूपांतरण से गुजरना पड़ता है।

अनुमान नहीं अनुभव ही उपाय है।

17-2-1971

(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, पूना)

72/ ज्ञान की गति है--अनूठी, सूक्ष्म और बेबूझ

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम। ज्ञान की गति सूक्ष्म है।

और अक्सर--बेबूझ।

जो कहा जाता है, वही नहीं--अंततोगत्वा उसके परिणाम भी उतने ही महत्वपूर्ण है।

कृष्णमूर्ति का ध्यान आधे सत्य पर ही है--जो कहा जाता है उस पर ही।

इसलिए, जो वे कहते हैं, वह ठीक है लेकिन परिणाम अकसर ही अनुकूल नहीं होते हैं।

क्योंकि, जिससे कहा जाता है, उसका--उसकी स्थिति का--उसकी व्याख्या का बिल्कुल ही ध्यान नहीं रखा जाता है।

और मेहेर बाबा जो कहते हैं, वह ठीक नहीं है लेकिन उसके परिणाम अक्सर ही अनुकूल आते हैं।

क्योंकि जिससे कहा जाता है, उसको ही केंद्र में रख कर कहा जाता है।

निश्चय ही मेरी कठिनाई दोनों से गहरी है; क्योंकि मैं दोनों की भांति बोलता और जीता हूं।

इसलिए मेरे वक्तव्य साधारणतः असंगत (इनकंसिस्टेंट) ही होते हैं।

और यह मैं भलीभांति जानता हूं।

वस्तुतः तो वे जान-बूझ कर ही संगत हैं।

संगत (कंसिस्टेंट) होने का लोभ मैंने नहीं रखा है।

पूछोगेः कारण?

कारण हैः बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

कभी मैं सत्य ही बोलता हूं--निर्वस्त्र नग्न--जैसा है, वैसा ही।

जिससे बोलता हूं--उसको ही ध्यान में रख कर।

कभी मैं उसके ठीक विपरीत वह भी बोलता हूं जैसा कि नहीं है--लेकिन जिसके द्वारा परिणाम में सत्य और शुभ फलित हो सकता है।

लेकिन, वह भी जिससे बोलता हूं--उसको ही ध्यान में रख कर।

एक कहानी तुमसे कहूंः

किसी सूफी फकीर के पास एक आदमी गया और बोलाः 'मेरी पत्नी बांझ है, आप कुछ चिकित्सा करें।'

वह फकीर प्रसिद्ध चिकित्सक भी था।

फकीर ने स्त्री को देखा और कहाः ‘क्षमा करें, मैं चिकित्सा नहीं कर सकूंगा। क्योंकि, यह स्त्री किसी भी स्थिति में चालीस दिन के भीतर मर जाएगी।’
निश्चय ही वह स्त्री खाट से लग गई और मृत्यु के दुख में उसने खाना- पीना छोड़ दिया।
लेकिन, चालीस दिन बीत गए और वह नहीं मरी।
खुशी में पति ने जाकर फकीर को कहा कि आपकी दुर्भाग्यपूर्ण भविष्यवाणी व्यर्थ गई है।
फकीर ने कहाः वह मैं जानता हूं लेकिन अब वह बांझ नहीं रहेगी--यह भविष्यवाणी मेरी चिकित्सा थीं।’
पति ने चकित हो पूछाः ‘चिकित्सा? यह कैसी चिकित्सा है?’
फकीर ने कहाः ‘ज्ञान की गति सूक्ष्म है। तुम्हारी पत्नी का मोटापा ही उसके बांझ होने का कारण था। और मृत्यु के भय के अतिरिक्त उसे भोजन से रोकने का और कोई उपाय न था। इसलिए, अब वह स्वस्थ है और बांझपन से मुक्त।’ निश्चय ही ज्ञान की गति सूक्ष्म है।
और उसके मार्ग अनूठे हैं।

18-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

73/ शुभ आशीषों की शीतल छाया में

प्यारी साधना,
प्रेम। निश्चय ही मैं तेरे साथ हूं।
और तू जो एकांत में मुझसे कहती है, वह मुझे सुनाई पड़ता है।
कहने के पूर्व थोड़ी गहरी श्वासें ले लेना और जो भी कहे उसे कम से कम तीन बार कहना--ठीक एक से शब्दों में।
लिख कर पढ़े तो और भी ठीक होगा।
और, जोर से बोल कर ही कहना--मन ही मन नहीं।
ठीक ऐसे ही जैसे कि मैं तेरे सामने उपस्थित हूं।
ध्यान से क्रमशः गहराती चल।
मेरे शुभाशीष प्रतिपल तेरी रक्षा करेंगे।
उनकी शीतल छाया तो मुझे अनुभव हो रही है न?

18-2-1971
(प्रतिः सौ. साधना बेलापूरकर, पूना)

74/ ऊर्जा-जागरण से देह-शून्यता

प्यारी साधना,
प्रेम। ध्यान शरीर की विद्युत-ऊर्जा (बॉडी इलेक्ट्रसिटी) को जगाता है--सक्रिय करता है--प्रवाहमान करता है।
तू भय न करना।
न ही ऊर्जा-गतियों को रोकने की चेष्टा करना।
वरन, गति के साथ गतिमान होना--गति के साथ सहयोग करना।
धीरे-धीरे तेरा शरीर-भान-पौद्गलिक-भाव (मैटीरियल सेंस) कम होता जाएगा
और अपौद्गलिक ऊर्जा भाव (नॉन-मैटीरियल एनर्जी सेंस) बढ़ेगा।
शरीर नहीं--ऊर्जा--शक्ति ही अनुभव में आएगी।
शरीर की सीमा है--शक्ति की नहीं।

शक्ति के पूर्णानुभव में अस्तित्व (एक्झिस्टेंट) में तादात्म्य होता है।
सम्यक है तेरी स्थिति--अब सहजता से लेकिन दृढ़ता से आगे बढ़।
जल्दी ही सफलता मिलेगी।
सफलता सुनिश्चित है।

18-2-1971
(प्रतिः सौ. साधना बेलापूरकर, पूना)

75/ संन्यास है--मन से मनातीत में यात्रा

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। संन्यास के लिए मन कैसे-कैसे बचाव खोज रहा था? क्योंकि, संन्यास मन की मृत्यु जो है।
पर साहस किया तुमने उठ सके मन के ऊपर।
तो जाना वह जो कि परमानंद है।
मन है संसार।
मनातीत है सत्य।
संन्यास मन से मनातीत में यात्रा है।
अब जो पाया है उसकी खबर औरों तक भी पहुंचाओ।
जो जाना है उसे औरों को भी जनाओ।
अब तो तुम भी उपकरण हो गए प्रभु के।
अब उसे बोलने दो--तुम उसकी वाणी बनो।
अब उसे गाने दो--तुम उसकी बांसुरी बनो।

18-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

76/ ध्यान--रूपांतरण की विधायक खोज

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। देखा न कि ध्यान से ही काम-क्रोध विलीन हो जाते हैं?
अनुभव किया न कि ध्यान से प्रेम-करुणा का जन्म हो जाता है?
काम-क्रोध से मात्र लड़ते रहना--समय और शक्ति को खोना है।
और विक्षिप्तता को आमंत्रण भी।
निषेध मार्ग नहीं है।
क्योंकि, निषेध निपट दमन है।
विधेय को--विधायक (पाजिटिव) को खोजने से ही आत्म-क्रांति घटित होती है।

18-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

77/ द्वंद्व अज्ञान में ही है

प्यारी साधना,
प्रेम। पूछा है तूनेः ‘मनःस्थिति संन्यासी की ओर परिस्थिति गृहस्थी की--इनमें मेल कैसे करें?’

मेल तू करना ही नहीं--वह कठिन कार्य प्रभु पर ही छोड़!
क्योंकि, वह ऐसे मेल करने में कुशल भी है अनुभवी भी।
संसार और स्वयं का भी उनसे मेल किया है--शरीर और आत्मा का भी।
उसके लिए तो जैसे कहीं द्वंद्व है ही नहीं।
द्वंद्व अज्ञान में ही है।
ज्ञान में द्वंद्व नहीं है।
इसलिए, अज्ञान में मेल बिठाना पड़ता है फिर भी बैठता नहीं--बैठ सकता ही नहीं।
और ज्ञान में मेल बैठ ही जाता है क्योंकि विपरीत संभव ही नहीं है।
तू मेल बिठाने में मत पड़ना--अन्यथा स्थिति और भी बेमेल हो जाएगी।
तू बेमेल को स्वीकार कर ले और प्रार्थना पूर्वक जीती चल।
फिर किसी दिन पाएगी कि बेमेल कहीं है ही नहीं।
स्वीकृति उसकी मृत्यु है।

18-2-1971
(प्रतिः सौ. साधना बेलापूरकर, पूना)

78/ काम-ऊर्जा का रूपांतरण--संभोग में साक्षीत्व से

प्यारी विमल,
प्रेम। काम-वासना स्वाभाविक है।
उससे लड़ना नहीं; अन्यथा उसके विकृत-रूप चित्त को घेर लेंगे।
काम (सेक्स) का समझो और काम-कृत्य (सेक्स-एक्ट) को भी ध्यान का विषय बनाओ।
काम में, संभोग में भी साक्षी (विटनेस) बनो।
संभोग में साक्षी-भाव के जुड़ते ही काम-ऊर्जा (सेक्स एनर्जी का रूपांतरण प्रारंभ हो जाता है।
वह रूपांतरण ही ब्रह्मचर्य है।
ब्रह्मचर्य काम का विरोध नहीं--काम-ऊर्जा का ही ऊर्ध्वगमन है।
जीवन में जो भी है उसे मित्रता से और अनुग्रह से स्वीकार करो।
शत्रुता का भाव अधार्मिक है।
स्वीकार से परिवर्तन का मार्ग सहज ही खुलता है।
शक्ति तो सदा ही तटस्थ है।
वह न बुरी है, न अच्छी।
शुभ या अशुभ उससे सीधे नहीं--वरन उसके उपयोग से ही जुड़े हैं।

18-2-1971
(प्रतिः श्रीमती विमला सिंहल, अब मा योग विभूति, नीमच, म. प्र.)

79/ आत्म-सृजन का श्रम करो

प्रिय दीपक,
प्रेम। भय न करो।
उतनी शक्ति श्रम में लगाओ।
भय आत्मघात है।
श्रम आत्म-सृजन है।
श्रम करो और फल प्रभु पर छोड़ो।
फल की चिंता श्रम की कमी से पैदा होती है।
श्रम ही पूरा तो फल की बात ही भूल जाती है।
और श्रम हो पूरा तो फल तो सदा आता ही है।

18-2-1971
(प्रतिः श्रीयुत दीपक कुमार दीक्षित, 12/346, बेलासिस ब्रिज, तारदेव, बंबई-3)

80/ मन का भिखमंगापन

प्रिय योग तरु,
प्रेम। और ज्यादा की मांग ही भिखमंगापन है।
इसलिए तो अक्सर ही एक चमत्कार घटित होता है कि भिखारियों में भले सम्राट मिल जावे लेकिन सम्राटों में सम्राट नहीं मिलते हैं।

जुन्नैद के चरणों में किसी ने पांच सौ स्वर्ण अशर्फियां लाकर भेंट कीं।
जुन्नैद ने भेंट कर्त्ता से पूछाः ‘इस धन के अतिरिक्त और भी धन है तुम्हारे पास?’
उस आदमी ने प्रसन्नता से कहाः ‘यह तो कुछ भी नहीं है--मेरे पास अनगिनत अशर्फियां है।’
जुन्नैद ने पुनः पूछाः ‘क्या तुम्हें और भी संपदा की आकांक्षा है? (डू
यू डिजायर मोर?)’
उस आदमी ने कहाः ‘निश्चय ही--इतने से धन से हो ही क्या सकता है?’
जुन्नैद ने उस दीन-दरिद्र की तरफ दया से देखा और कहाः ‘तब फिर इन पांच
सौ अशर्फियों को तुम्हीं रखो क्योंकि तुम्हें मेरी बजाय उनकी ज्यादा जरूरत है!
(दैन यू मस्ट कीप दिस मनी, फॉर यू आर मोर इन नीड दैन!)’
जुन्नैद के कपड़े जगह-जगह से फटे थे।
उसके पास ही उसका भिक्षा-पात्र रखा था।
लेकिन, उसके फटे कपड़ों के भीतर से जो झांक रहा था; उसके समक्ष कुबेर की शान कुछ भी न थी और सोलोमन के खजाने बेरौनक थे।

18-2-1971
(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

81/ स्वयं का मिटना ही एकमात्र तप है

प्रिय कृष्ण सरस्वती,
प्रेम! शुक्ल पक्ष शुरू हुआ था--चांद धीरे-धीरे पूर्णिमा की ओर बढ़ रहा था।
और चांद के बढ़ने के साथ ही सूफी फकीरों के नृत्य की गति बढ़ती जाती थी।
पूरे चांद के हो जाने तक वे रोज रात्रि नाचने वाले थे।
किसी अलौकिक मदिरा में जैसे वे डूबे थे।
वे शायद नाचते नहीं थे--प्रभु ही उन्हें नचा रहा था!
या, प्रभु ही उनसे नाच रहा था।
वैसे दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं।
स्वयं में मिटे बिना कोई स्वयं को प्रभु में छोड़ता ही कहां है?
एक व्यक्ति ने आकर पूछाः ‘क्या मैं भी इस नृत्य में सम्मिलित हो सकता हूं?’
सूफियों के प्रधान ने कहाः ‘ ‘मैं’ के रहते किसी सम्मिलित हो सकोगे? फिर यह नृत्य नहीं, जीवन है--नृत्य नहीं, अस्तित्व है। और फिर इसमें सम्मिलित होने के पूर्व परीक्षा भी तो आवश्यक है?’

उस आदमी ने पूछाः ‘कैसी परीक्षा?’
फकीर ने कहाः ‘पहले तीन दिन का पूर्ण उपवास करो। फिर स्वादिष्ट भोजन रखना स्वयं को सामने और फिर नृत्य और भोजन में चुनाव करना। यदि फिर भी तुम नृत्य को चुन सको तो हम तुम्हारा स्वागत करेंगे।’
निश्चय ही तप के बिना नृत्य कहां?
तप के बिना गति कहां--गान कहां?
तप के बिना सुर कहां--संगीत कहां?

19-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

82/ वही दे सकते हैं--जो कि हम हैं

प्रिय कृष्ण सरस्वती,
प्रेम हम वही देते हैं और दे सकते हैं जो कि हमारे पास है।
या और भी गहरे खोजे तो केवल वही जो हम हैं।
स्वयं के अतिरिक्त और कुछ भी दिया नहीं जा सकता है।
इसलिए, जो भी हम देते हैं क्रोध या करुणा, घृणा या प्रेम--वही हमारी प्रतिमा है--वही हम हैं।

ईसा गुजरते थे एक गांव से।
कुछ लोगों ने उन्हें गलियां दीं--बेहूदी, अशिष्ट, अभद्र।
अशिष्ट और अभद्र इसलिए कहता हूं--क्योंकि, शिष्ट और भद्र गालियां भी हैं।
ईसा ने गालियां सुनी और प्रत्युत्तर में उन सबके लिए प्रभु से प्रार्थना की।
एक व्यक्ति ने ईसा से कहाः ‘यह क्या कर रहे हैं? प्रार्थनाएं गालियों
के उत्तर में?
ऐसा लेन-देन कभी देखा नहीं?’
ईसा ने कहाः ‘लेकिन मैं वही तो खर्च कर सकता हूं न जो कि मेरी गांठ में है?
(आई कुड सपैन्ड ओनली ऑफ वट आई हैड इन माई पर्स)

19-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

83/ स्वर्ग और नरक--एक ही तथ्य के दो छोर

प्रिय योग तरु,
प्रेम। मनुष्य की आकांक्षाएं आत्मघाती हैं।
वह चाहता है, कि दुख न रहे लेकिन किस लिए?
इसलिए कि सुख ही सुख शेष रहे।
लेकिन उसे पता नहीं है कि दुख गया कि सुख भी गया।
नरक को मिटा कर स्वर्ग को कौन नहीं बचा लेना चाहता है?
लेकिन बिना यह जाने कि वे दोनों एक ही तथ्य के दो छोर हैं।
बचते हैं तो साथः जाते हैं तो साथ।
स्वर्ग को जिसने चाहा, उसने नरक को निमंत्रण भेजा।
जीवन का पकड़ा जोर से कि मृत्यु हाथ में आई।
अत्तार कहा करता था कि पूछा किसी ने चांद से कि ‘तेरी सबसे बड़ी और एकमात्र आकांक्षा क्या है? (वॉट इ.ज योर स्ट्रांगस्ट डिजायर?)’

चांद ने कहा कि ‘सूर्य न रहे (दैट दि सन शुड वैनिश)’
अब कौर समझाए चांद को कि पागल! सूर्य के बिना तू भी नहीं रह सकता है!

19-2-1971
(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

84/ अधैर्य से साधना में विलंब

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। अधैर्य आत्मघात है।
सत्य की खोज में धैर्य ही मार्ग है।

एक सदगुरु से किसी ने पूछाः ‘मैं यदि प्रतिपल आपकी आज्ञा का पालन करूं
तो सत्य की खोज कितने समय में पूरी हो सकेगी?’
सदगुरु ने कहाः ‘10 वर्ष कम--से कम।’
उस व्यक्ति ने साश्चर्य कहाः 10 वर्ष? --लेकिन इतना धैर्य मैं न रख सकूंगा। मान लें कि मैं दो गुना श्रम करूं--रात दिन आपके पास ही रहूं तो कितना समय लगेगा?
सदगुरु ने कहाः ‘20 वर्ष--कम से कम!’
उस व्यक्ति ने चौंककर कहाः ‘यह क्या कहते हैं? पहले आपने ही कहा थाः दस वर्ष! और अब जबकि मैं दो गुना श्रम करने को तैयार हूं तब आप ही कहते हैंः 20 वर्ष--आपने तो दो गुने श्रम के साथ समय भी दो गुना कर दिया! यह कैसा गणित है? शायद आप मुझे समझे नहीं--मैं संकल्प करता हूं कि मत्त श्रम करने में कुछ भी छोड़ न रखूंगा--स्वयं को पूरा ही दांव पर लगा दूंगा--आपकी आज्ञा ही मेरा जीवन होगी पर ठीक से बतावें कि समय कितना लगेगा?’
सदगुरु ने कहाः ‘30 वर्ष--कम से कम। क्योंकि जो शिष्य इतनी शीघ्रता में है, वह इतने ही आहिस्ते सीख पाता है। (ए पीपुल इन सच ए हरी लर्नस सलोली)’

19-2-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

85/ नासमझदारों की समझ

प्यारी मौनू,
प्रेम। एक सूफी फकीर गुजरता था किसी नगर से।
तपते सूर्य और रेगिस्तानी यात्राओं ने उसके चेहरे को काला कर दिया था।
जिसकी उसे खोज थी, यह तो मिलता नहीं था यद्यपि वह स्वयं रोज-रोज जरूर खोता जाता था।
उसकी आंखें सदा ही अज्ञात हो खोजती रहतीं और उसके हाथ सदा ही अज्ञात
को टटोलते रहते।
उस फकीर को किसी व्यापारी ने देखा और उसके रंग-ढंग को देख सोचा कि जरूर ही वह किसी का खो गया गुलाम है।
आदमी स्वयं से ज्यादा और स्वयं के पार तो कभी सोच ही नहीं पाता है न?
वह व्यापारी स्वयं ही हजार तरह की गुलामियों से घिरा था--यद्यपि मानता था स्वयं को कि अपना मालिक है।
अपना ही क्यों--औरों का भी?
गुलाम सदा ही ऐसा मानते हैं।
उस व्यापारी ने फकीर से पूछाः ‘क्या तुम किसी के गुलाम नहीं?

(‘आर यू नॉट ए सलेव?’)
फकीर तो गुलाम था ही प्रभु का।
उसने आनंद से कहाः जरूर हूं! ‘(दैट आई एम)!’
व्यापारी ने पूछाः ‘और तुम्हारा नाम?’
फकीर स्वयं को ही भूलता जा रहा था--सो उसे नाम याद न आया।
व्यापारी ने कहाः ‘कोई हर्ज नहीं--स्मृति तुम्हारी कमजोर मालूम पड़ती है--लेकिन तुम्हारे विनम्र स्वभाव के कारण मैं तुम्हें ‘खैर’ (शुभः गुड) कह कर पुकारूंगा!’
जिन्हें स्वयं का कोई भी स्मरण नहीं है, वे स्वयं के नाम को जानने को
ही स्मृति (रिमेंबरिंग) कहते हैं!
हालांकि, जिन्हें स्वयं का स्मरण करना है, उन्हें स्वयं के संबंध में
सब कुछ सब नाम-घास--पता-ठिकाना भूल जाना पड़ता है!
अंततः उस व्यापारी ने कहा, ‘उठो! चलो! मेरे साथ--जब तक कि मैं तुम्हारे मालिक को खोज लूं तब तक मेरे साथ रह सकते हो और मेरा काम कर सकते हो?’
फकीर हंसा और बोलाः ‘मैं आपकी कृपा से अत्यंत अनुगृहीत हूं और कृपा करके जरूर ही मेरे मालिक को खोजने में मेरी सहायता करें क्योंकि, मैं कितने लंबे समय से उसे खोज रहा हूं और अब तक नहीं खोज पाया हूं!’ (आई वुड लाइक दैट आई हैव बिन सीकिंग माई मास्टर फॉर सच ए लांग टाइम!)
आदमी-आदमी की भाषा अलग है।
और धार्मिक व्यक्ति और अधार्मिक व्यक्ति की भाषाओं में तो कोई भी ताल-मेल नहीं होता है।
पर शब्द तो वे ही हैं और इसलिए उलझनों का कोई अंत ही नहीं है।

19-2-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

86/ आदमी ऐसा ही जीता है--तिरछा-तिरछा

प्रिय कृष्ण सरस्वती,
प्रेम। एक सूफी दरवेश ने किसी द्वार पर भिक्षा के लिए प्रार्थना की। गृहपति ने उसकी ओर देखे बिना ही कहाः ‘क्षमा करें--किंतु घर में कोई है नहीं।’
फकीर हंसा और बोलाः ‘लेकिन, मैं किसी को कहां मांगता हूं--मैं तो सिर्फ भोजन ही मांगता हूं।’
इस बार गृहपति ने चौंककर फकीर की ओर देखा।
लेकिन फिर भी कहाः ‘मैं समझा--पर भोजन देने के लिए ही तो कोई आदमी घर में नहीं है?’
फकीर पुनः हंसा और बोलाः ‘महानुभाव! आदमी घर में नहीं है? फिर आप कौन हैं? --आदमी नहीं?’
गृहपति उठा और भोजन लेकर आया।
पर फकीर ने भोजन लेने से इनकार कर दिया और कहाः ‘मैं भलीभांति समझ गया
था कि भोजन आपको नहीं देना है पर यही बात मैं आपसे सीधी-सीधी सुनना चाहता था।’
आदमी ऐसा ही जीता है--तिरछा-तिरछा।
जो कहना है--वही नहीं कहता यद्यपि उसे ही और-और तरह से कहना चाहता है।
जो करता है--वही नहीं करता यद्यपि उसे ही पीछे के भागों से करना पड़ता है।
जो होता है--वही नहीं होता है यद्यपि उसके अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता है।

20-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

87/ Missing

88/ चाह से मुक्ति ही मोक्ष है

प्रिय योग लक्ष्मी,
प्रेम। परमात्मा ने आत्माएं बनाईं और उनके सामने नरक लाया गया और उनसे कहा गया कि जो नरक चुनना चाहें वे नरक में प्रवेश कर जाएं--पर नरक कौन चुने--सभी ने मुंह फेर लिया।
फिर लाया गया संसार और 90 प्रतिशत आत्माएं संसार में प्रवेश कर गईं। परमात्मा हंसा क्योंकि संसार नरक के ही मुख्य द्वार का नाम है!
फिर लाया गया स्वर्ग।
जो आत्माएं शेष बची थीं उनमें से भी 99 प्रतिशत स्वर्ग में प्रवेश कर गईं।
परमात्मा और भी जोर से हंसा।
क्योंकि स्वर्ग नरक का ही विशेष द्वार है!
फिर पीछे तो अंगुलियों पर गिनी जा सकें इतनी ही आत्माएं शेष बचीं। परमात्मा ने उनसे पूछाः ‘तुम्हारे क्या इरादे हैं? तुम्हें कहां जाना है?’
उन आत्माओं ने कहाः ‘जो आपकी मर्जी। जहां भेजें--वहीं हमारा स्वर्ग है।’
परमात्मा ने कहाः ‘नरक भेजूं तो?’
उन आत्माओं ने कहाः ‘आपके द्वारा मिला नरक भी स्वर्ग है--स्वयं के अज्ञान और अहंकार में चुना स्वर्ग भी नरक।’
परमात्मा ने आंखें बंद कीं और बहुत सोचा और फिर मोक्ष का निर्माण किया उनके लिए जिन्होंने कि पूर्ण समर्पण का साहस किया था।
इसलिए ही मैं कहता हूंः छोड़ो स्वयं को--छोड़ा चुनवा को--छोड़ो चाह को।
क्योंकि सब चुनाव--सब चाहें नरक के ही भिन्न-भिन्न द्वार हैं।
और जब भी किसी को चाह पकड़ती है तभी वह बंधन को चुन लेता है।
मुक्ति--पूर्ण-मुक्ति तो केवल उन्हीं के लिए है जो कि चाह से ही मुक्त है। चाह से मुक्ति ही मोक्ष है।

20-2-1971
(प्रतिः मा योग लक्ष्मी, बंबई)

89/ अंतर-अभीप्सा ही निर्णायक है

प्यारी धर्म ज्योति,
प्रेम। एक रात्रि किसी सम्राट ने स्वप्न देखा और स्वप्न में देखा कि उसका एक परिचित सम्राट स्वर्ग में है और उसका ही एक परिचित संत नरक में। स्वभावतः ही चकित हुआ वह सम्राट।
और स्वप्न में ही पूछ बैठाः ‘इसका अर्थ क्या है? यह उलटी स्थिति क्यों है?’
एक अज्ञात आवाज ने प्रत्युत्तर में कहाः ‘सम्राट स्वर्ग में है क्योंकि वह सदा संतों को खोजता रहा और सत्संग को! और संत नरक में है क्योंकि, उसने अपने पूरे जीवन में सिवाय सम्राटों को खोजने के और कुछ भी नहीं किया।’

20-2-1971

(प्रतिः मा धर्म ज्योति, बंबई)

90/ सत्य की खोजः लंबी यात्रा, अशेष यात्री

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। यात्रा है पर्वतीय।
गिराने को बहुत खाई-खड्ड हैं।
भटकने-भटकाने को बहुत-से भ्रांत मार्ग हैं।
आलस्य से भरा जीवन है।
नीचे फिसलने की वृत्तियों को सदा-सदा छिपाए बैठा मन है।
अनंत-अनंत जन्मों की जड़ हो गई आदतें हैं।
संस्कारों की गले से बंधी चट्टानें हैं।
कर्मों की हाथ-पैरों में पड़ी जंजीरें हैं।

एक साधु से किसी ने पूछाः ‘सत्य का मार्ग क्या है?’
साधु सूर्य के प्रकाश में स्नान करते, सामने ही फैले पर्वत कीशृंखलाओं को देखने लगा।
लेकिन बोला कुछ भी नहीं।
उस व्यक्ति ने पुनः पूछाः ‘मार्ग क्या है? (वॉट इ.ज दि वे?)’
साधु ने कहाः ‘कैसा सुंदर है यह पर्वत! (वॉट ए फाइन माउंटेन दिस इ.ज!)’
उस व्यक्ति ने साश्चर्य कहाः ‘किंतु मैं पर्वत के संबंध में नहीं--पथ
के संबंध में पूछता हूं? (आई एम नॉट आस्किंग यू अबाउट दि माउंटेन, बट अबाउट दि वे?)
साधु हंसा और बोलाः ‘बेटे! लेकिन जब तक तुम पर्वत के पार नहीं हो जाते
हो तब तक मार्ग को भी नहीं पा सकते हो! (सो लोंग एज यू कैन नॉट गो बियांड दि माउंटेन, माई सन, यू कैन नॉट रिच दि वे!)’
निश्चय ही पार करना है पर्वतों को।
और फिर निराश होने का कोई भी कारण नहीं है।
क्योंकि पार करने वाला सदा ही पर्वतों से बड़ा है।

22-2-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

91/ अज्ञात को ज्ञात से समझने की असफल चेष्टा

प्यारी दुर्गा,
प्रेम। अज्ञात को ज्ञात से समझने की चेष्टा स्वाभाविक है। लेकिन, ऐसी चेष्टा सदा सही नहीं होती है।
फिर थोड़ा धैर्य रखती तो ऐसी भूल में न पड़ती।
इतना अधैर्य?
निर्णय लेने की इतनी जल्दी?
अतीत के अनुभवों से भविष्य की व्याख्या?
काम-ऊर्जा (सैक्स-एनर्जी) का ही रूपांतरण है ध्यान।
फिर तेरे आभा-मंडल में स्पष्ट जो लक्षण हैं उनसे कभी भी जरा-सी भूल से मस्तिष्क निष्क्रिय हो सकता है या स्मृति-नाश हो सकता है।
तेरी आंखें गहरी आंतरिक रिक्तता की सूचक हैं।
जो कि और भी बढ़ सकती हैं।
ऐसी किसी कठिनाई में तू न पड़े इसलिए इतना समय तुझे दिया और उसके लिए तूने जो अनुग्रहपूर्ण पत्र लिखा है उससे सच ही मैं आनंदित हूं!
आह! कैसा सुखद धन्यवाद तूने भेजा है?

तेरे धन्यवाद को देखते हुए मैं चाहूंगा कि मेरी विधि से तू ध्यान न करे क्योंकि कोई भी जटिलता पैदा हो तो अब तुझे समय देना--तेरे ही कारण--मैं संभव नहीं देखता हूं।
लेकिन किसी और विधि से भी ध्यान करने के पहले बहुत सोच-समझ कर आगे बढ़ना अन्यथा तू खतरे में पड़ सकती है।

21. 2. 1971
(प्रतिः सौ दुर्गा जैन, बंबई)

92/ हर पल जीता हूं पूरा

प्यारी धर्म ज्योति,
प्रेम। सादी ने लिखा हैः हम एक लंबी यात्रा पर थे।
दुरूह था मार्ग और अनेक कष्टों से भरा हुआ।
एक सूफी दरवेश भी हमारे साथ हो लिया--उसके पास न तो एक पैसा ही था, न ही कुछ और।
हम सब तो ऊंटों पर थे, लेकिन वह पैदल ही चल रहा था।
फिर भी उसके आनंद का कोई ठिकाना नहीं था और वह अक्सर कहता थाः ‘न मैं ऊंट का बोझ हूं--न कोई ऊंट ही मेरा है। न मत्त किसी का मालिक हूं, न किसी का गुलाम। न अतीत की चिंताएं मुझे, न भविष्य की। वर्तमान ही मेरे लिए काफी है। पल-पल ही है मेरा जीवन। हर श्वास लेता हूं पूरी--हर पल जीता हूं पूरा।’ लेकिन हम सबके बीज सबसे ज्यादा चिंतित एक व्यापारी ने उसे लौट जाने
की सलाह दी।
भविष्य के खतरे बताए।
अतीत की यात्राओं के अपने अनुभव गिनाए।
और उसके न मानने पर उससे यह भी कहा कि तू अपने ही हाथों मौत के मुंह में जा रहा है--भोजन की कमी और पैदल-यात्रा की थकान तुझे निश्चित ही मार डालेगी।
लेकिन वह फकीर बस हंसता रहा--गीत गाता रहा और आगे बढ़ता रहा।
और फिर यात्रा रोज-रोज कठिन होने लगी।
सबके चेहरे चिंता, दुश्चिंताओं की रेखाओं से भर गए।
वह व्यापारी तो बिल्कुल विक्षिप्त-सा हो गया।
लेकिन, वह फकीर हंसता रहता और गाता रहताः ‘हर श्वास मैं लेता हूं पूरी--हर पल मैं जीता हूं पूरा! (फुल आई ब्रीथ, फुल आई लिव लाइफ)
और फिर तो यात्रा एक-एक पग असंभव हो गई।
उस अनुभवी यात्री की बातें सभी को सही मालूम होने लगीं।
वह यात्रा बस एक दुख स्वप्न (नाइटमेअर) ही हो गई।
पर वह फकीर गीत ही गाता रहा।
उसके चेहरे की रौनक हर कठिनाई के साथ बढ़न लगी।
उसकी आंखों में अलौकिक आनंद के फूल खिलते मालूम होने लगे।
और एक दिन व्यापारी अति-कठिनाइयों के कारण मर गया।
और उस दरवेश ने व्यापारी की लाश के पास खड़े होकर कहाः प्यारे! मैं नहीं मरा पद-यात्रा की कठिनाइयों में--और तुम ऊंट की सवारी और सुविधा मैं भी मर गए? असल में न समझ दिन में ही दीये जला लेते हैं और फिर रात्रि में चकित होते हैं कि प्रकाश क्यों नहीं है! (फूस बर्न लैंप ड्यूरिंग दि डे एण्ड, एट नाइट दे वांडर वॉय दे हैव नो लाइट!)’

21-2-1971
(प्रतिः मा धर्म ज्योति, बंबई)

93/ जिंदगी तर्क और गणित से बहुत अधिक है

प्रिय कृष्ण सरस्वती,
प्रेम! तर्क और सत्य एक नहीं हैं।
न ही गणित और जीवन ही एक है।
दो पक्षियों को बांध दो एक साथ।
अब उनके पास दो गुने पंख हैं।

निश्चय ही अब उन्हें लड़ने में सुविधा होनी चाहिए।
दो गुनी शक्ति से वे उड़ सकते हैं।
या, दो गुने फासले को पार कर सकते हैं।
पर वस्तुतः वे उड़ेंगे ही नहीं--क्योंकि उड़ ही न सकेंगे।
क्योंकि, गणित और जिंदगी एक नहीं है।
क्योंकि, तर्क और सत्य एक नहीं हैं।

21-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

94/ जीवन की धन्यता है--अभिव्यक्ति में--स्वयं की, स्वधर्म की

प्रिय कृष्ण करुणा,
प्रेम। स्वयं की पूर्णाभिव्यक्ति ही आनंद है।
अनभिव्यक्त व्यक्तित्व ही अनंत मनस-रोगों का स्रोत है।

जामी ने लिखा हैः
एक कवि चिकित्सक के पास गया और बोलाः ‘न मालूम कैसे-कैसे रोग मुझे पकड़ रहे हैं? मैं बहुत दुखी और पीड़ित हूं--शरीर मेरा ऐसा टूटता है कि जैसे बुरी तरह पीटा गया हो?’
चिकित्सक ने कवि की नाड़ी नहीं देखी--वरन झांका उसकी आंखों में।
और फिर कहा उस कवि सेः ‘क्या यह सच नहीं है कि तुमने अपना नवीनतम गीत
अब तक किसी को गाकर नहीं सुनाया है?’
कवि के चेहरे से जैसे अचानक रात हट गई।
और उसकी आंखों में भोर की ताजगी नाचने लगी।
और उसने कहाः ‘यह बिल्कुल ही सत्य है!’
चिकित्सक ने कहाः ‘फिर पहले मुझे ही सुनाओ! कृपा करो और सबसे पहले मुझे ही सुनाओ!’
कवि गीत गाने लगा।
बीमार पता नहीं कहां खो गया?
वह रुग्ण शरीर स्वस्थ दिखाई पड़ने लगा।
वे शिथिल अंग गीत-पंक्तियों के साथ नव-जीवन से भरने लगे। वह टूटता शरीर गीत की लयों में मदहोश हो झूमने लगा।
और चिकित्सक की प्रार्थना पर बार-बार कवि ने अपना गीत दुहराया।
और हर बार गीत उसे और भी प्राणवान कर गया।
और जब आधी रात गए चिकित्सक ने कवि को विदा दी तो कवि को स्मरण ही नहीं
था कि वह चिकित्सक के पास किसलिए आया था!
मनुष्य आज अधिकांशतः ऐसा ही रुग्ण है।
जीवन है अभिव्यक्ति स्वयं की--स्वधर्म की।
जीवन मिलता नहीं है बना-बनाया।
और मिलता है तो रुग्ण और बसा और मुर्दा मिलता है।
जीवन को करना होता है सृजन--रोज-रोज--पल-पल।
जो अनभिव्यक्त संभावनाएं भीतर अटक जाती है, वे ही बन जाती हैं रोग।

और हम समझते हैं कि जीवन सिर्फ आहार है--लो और लो--बस सब कुछ स्वयं के भीतर डालते चलो।
बच्चे जैसे स्वयं को बस मुंह ही समझते हैं ऐसी ही बचकानी (ज्यूवनीले) अधिकांश मनुष्यों की स्थिति है।
जबकि जीवन के गहरे अर्थ दान में ही प्रगट होते हैं।
लेने में नहीं--देने में ही जीवन शिखरानुभूतियों (पीक एक्सपीरिएंसिस)
को उपलब्ध होता है।
और दान--स्वयं को अशेष दान जहां है वहीं है अभिव्यक्ति। ऐसी अभिव्यक्ति में ही स्वास्थ्य है।

21-2-1971
(प्रतिः मां कृष्ण करुणा, बंबई)

95/ सम-चित्त में अद्वैत स्वरूप का बोध

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम। निश्चय ही एक ऐसी चित्त-दशा है जहां सब समान हो जाता है।
शायद उस दशा को चित्त-दशा कहना ठीक नहीं; क्योंकि सम होते ही चित्त खो जाता है।
क्योंकि विषम होना ही चित्त है।
और शायद उस दशा को दशा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि चित्त के विषम ज्वर के खोते ही--या चित्त के खोते ही दशाएं भी खो जाती हैं।
फिर तो जो शेष रह जाता है वह स्वरूप है।
दशाएं आती है, जाती हैं--अनित्य होना ही उनका होना है।
स्वरूप न आता, न जाता--स्वरूप अर्थात वह जो नित्य है--स्वरूप अर्थात वह जिस पर दशाएं आती हैं और जाती हैं लेकिन जो स्वयं सदा-सदैव वही है जो है।
स्वरूप में सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है।
स्वरूप में सभी समस्याओं का एक ही समाधान है।
क्योंकि, स्वरूप अद्वैत है।

जोशु से दो भिक्षु मिलने आए थे।
उनमें से एक से जोशु से पूछाः ‘क्या मैंने पहले भी तुम्हें यहां कभी देखा है? (हैव आई एवर सीन यू हेअर बीफोर?)
उस भिक्षु ने कहाः ‘जी नहीं! महानुभाव! (नो सर, यू हैव नॉट)’
जोशु ने कहाः ‘तब एक प्याली चाय पीएं! (दैन हैव ए कप ऑफ टी)’
फिर जोशु ने दूसरे भिक्षु से वही सवाल पूछाः ‘क्या मैंने पहले भी तुम्हें यहां कभी देखा है?’
उस दूसरे भिक्षु ने कहाः ‘निश्चय ही महानुभाव! (यस सर, ऑफकोर्स यू हैव)’
जोशु ने उससे भी कहाः ‘तब एक प्याली चाय पीएं! (दैन हैव ए कैप ऑफ टी)’
फिर बाद में जोशु के आश्रम-व्यवस्थापक भिक्षु ने जोशु से साश्चर्य पूछाः ‘इसका क्या अर्थ है कि आपके प्रश्न का चाहे जो उत्तर हो, आप उत्तर में समान रूप से ही चाय की प्याली भेंट करते हैं? (हाउ इ.ज दैट यू मेक दि सम ऑफर ऑफ टी वॉटएवर इ.ज दि रिप्लाय टु योर क्वेश्चन?)’
इस पर जोशु ने जोर से पुकाराः ‘व्यवस्थापक भिक्षु! क्या तुम अभी भी यहीं हो? (मैनेजर आर यू सटील हिअर?)’
भिक्षु ने कहाः निश्चय ही! गुरुदेव! (ऑफ कर्स, मास्टर!)’
जोशु हंसा और बोलाः तब एक प्याली चाय पीएं! (दैन हैव ए कप ऑफ टी)’

22-2-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

96/ संकल्प पूर्ण हुआ कि शून्य हुआ

प्यारी मधु,
प्रेम। ऐसे ही--ठीक ऐसे ही कटते है बंधन।
ऐसे श्रम से ही खुलता है द्वार।
ऐसी अथक चेष्टा ही अमृत को खोज पाती है।
संकल्प जहां पूर्ण है वही संकल्प शून्य हो जाता है।
अर्थात वहीं समर्पण है।
और व्यक्ति बुझा कि प्रभु प्रकट हुआ।
दिया बुझा कि सूर्योदय है।

24-2-1971
(प्रतिः मा आनंद मधु, आजोल, गुजरात)

97/ साक्षी की प्रत्यभिज्ञा (रिकग्निशन) ही ध्यान है

प्यारी योग प्रेम,
प्रेम। मन में सदा ही उतार-चढ़ाव होते रहते हैं।
उससे विचार में मत पड़ना।
धीरे-धीरे मन के पार जो है, उसके प्रति जाग।
क्योंकि यही स्थिर है।
मन तो परिवर्तन है ही।
लहरों का तल ही मन है।
जरा-सा झोंका हवा का और वहां चहल-पहल हो जाती है।
लेकिन, उसमें उलझ ही मत।
उसे शांत करने में भी मत पड़।
मन की अशांति को भी जो जानता है--देखता है--उसे ही पहचान।
उस साक्षी (विटनेस) की प्रत्यभिज्ञा (रिकग्निशन) ही ध्यान है।

24-2-1971
(प्रतिः मा योग प्रेम, आजोल, गुजरात)

98/ साधन के मार्ग पर शत्रु भी मित्र है

प्रिय योग यशा,
प्रेम। जो बुरा करें उनके प्रति भी मन में सदा करुणा रखना।
और उनके प्रति अनुग्रह का भाव भी रखनाः क्योंकि वे करुणा का अवसर देते हैं।
साधना के मार्ग पर सभी मित्र हैं।
वे भी जो ऊपर से शत्रु जैसे मालूम होते हैं।

24-2-1971
(प्रतिः मा योग यशा, आजोल, गुजरात)

99/ शांत साक्षीभाव में ही डूब

प्रिय उर्मिला,

प्रेम। इस शांत साक्षीभाव में ही डूब जाना है।
यही है वह जगह जहां नाव डूबे तो किनारा आ जाता है।

24-2-1971
(प्रतिः श्रीमती उर्मिला सिंह, 107 रग्बी ग्राउंड, जबलपुर)

100/ आदमी की कुशलता--वरदानों को भी अभिशाप में बदलने की

प्रिय कृष्ण चैतन्य,
प्रेम। आह! आदमी भी कैसा अदभुत है--प्रभुदत्त वरदानों को भी अभिशापों में बदल लेने में वह कैसा कुशल है?
जीसस के संबंध में आस्कर वाइल्ड ने एक कहानी लिखी हैः
जीसस ने एक गांव में प्रवेश किया।
एक विशाल भवन से शराब पीए किसी व्यक्ति की आवाजें सुनी।
वे भवन में भीतर गए और शराब में धुत्त उस सुंदर काया वाले व्यक्ति के कंधे पर हाथ रख कर उन्होंने पूछाः ‘यह तुम्हारा कैसा ढंग है जीने का?’
उस व्यक्ति ने आंखें खोलीं और जीसस को पहचान कर कहाः मेरे प्रभु! मैं
तो पहले कोढ़ी था और तुम्हीं ने मुझे स्वस्थ किया और यह स्वर्ण जैसी सुंदर काया दी--लेकिन अब मैं इस जीवन का क्या करूं--और इस शरीर का क्या करूं और इस स्वास्थ्य का क्या करूं?’
जीसस चुपचाप उस भवन से बाहर हो गए।
उनकी आंखों में गहरी उदासी थी।
लेकिन बाहर उन्होंने एक युवक को एक विक्षिप्त शिकारी की भांति किसी स्त्री के पीछे भागते देखा।
उस युवक की आंखों में वासना की लपटों के सिवाय और कुछ भी नहीं था। जीसस ने उस युवक को रोका और पूछाः ‘क्या परमात्मा ने आंखें इसलिए दी हैं?’ वह युवक मुड़ा और जीसस को पहचान कर बोलाः ‘मेरे प्रभु! मैं तो अंधा था फिर तुम्हीं ने मुझे आंखें दीं। लेकिन अब इन आंखों का मैं और क्या कर सकता हूं?’
जीसस की उदासी और गहरी हो गई; फिर भी उन्होंने उस स्त्री को भी रोका जो
कि उस युवक को सब प्रकार से उकसा रही थी और उससे पूछाः ‘क्या पाप के अलावा और कोई मार्ग नहीं है?’
वह स्त्री खिलखिला कर हंसी और बोलीः ‘लेकिन तुम्हीं ने तो मेरे पाप क्षमा कर दिए थे? और फिर क्या यह मार्ग सुखमय नहीं है?’
जीसस फिर उस गांव में और न ठहर सके।
वे तत्काल गांव के बाहर निकल आए।
लेकिन गांव के बाहर निकलते ही राजपथ के किनारे उन्होंने एक व्यक्ति
को छाती पीट-पीट कर रोते देखा।
वे रुक गए और उन्होंने उस व्यक्ति से पूछाः ‘तुम रोते क्यों हो? तुम्हारी पीड़ा क्या है?’
उस व्यक्ति ने सिर ऊपर उठाया और जीसस को पहचान कर कहाः ‘मैं मर चुका था
और तुमने ही मुझे फिर से जीवन दिया। अब मैं रोऊं नहीं तो भला और क्या करूं?’

24-2-1971
(प्रतिः स्वामी कृष्ण चैतन्य, आजोल, गुजरात)

101/ गहरा खेल शब्दों का

प्रिय कृष्ण सरस्वती,

प्रेम। शब्दों का भी गहरा खेल है।

और जो लोग उस खेल को गहन गंभीरता से खेलते हैं, वे ही दार्शनिक (फिलॉसफर्स) हैं।

निश्चय ही उस खेल से मन-बहलाव तो होता है--लेकिन, सत्य की यात्रा नहीं।

इसलिए ही तो दर्शन (फिलासफी) न कहीं पहुंचाता है--न कहीं पहुंचाता।

और दर्शनशास्त्र से मुक्त हुए बिना धर्म में प्रवेश असंभव है।

शब्दों के खेल में अन्य खेलों से और भी एक रहस्य विशेषता है।

वह यह कि इसमें कभी कोई हारता नहीं है।

न ही कभी कोई जीतता ही है।

लेकिन, प्रत्येक स्वयं को जीता हुआ मानता है!

जान विसडम की एक कहानी तुमसे कहता हूं।

दो यात्री एक जंगल में से निकले।

घने जंगल के मध्य में थोड़ी सी खुली जगह थी जहां कि भांति-भांति के रंग-बिरंगे फूलों से पौधे लदे थे।

लेकिन उनके बीच-बीच में घास-पात भी खूब उगा था।

एक यात्री आस्तिक था।

उसने कहाः 'निश्चय ही इन फूलों की देखभाल कोई कुशल माली करता है!'

दूसरा यात्री नास्तिक था।

उसने कहाः 'कभी नहीं--क्योंकि बीच-बीच में उगी व्यर्थ की घास-पात इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इन फूलों की देखभाल करने वाला कोई भी नहीं है।'

फिर विवाद बढ़ गया।

दोनों ओर से तर्क दिए गए।

पर कोई परिणाम न आया।

तब उन दोनों ने वहीं तंबू गाड़ लिए--यह जानने को कि कोई माली है या नहीं?

चौबीस घंटे वे पहरा देते। लेकिन कोई माली दिखाई नहीं पड़ा।

तब आस्तिक ने कहाः 'निश्चय ही माली अदृश्य (इनविजिबल) है।'

तब उसने फूलों के चारों और तार बांधे और तारों में बिजली दौड़ाई, पहरे के लिए शिकारी कुत्ते रखे।

लेकिन, नहीं--माली का कोई पता नहीं।

बिजली के तारों को छूकर कभी कोई चीख नहीं आई।

न ही कुत्ते ही किसी की अदृश्य उपस्थिति से भौंके।

तब आस्तिक ने कहाः 'माली न केवल अदृश्य है वरन अस्पर्शनीय भी है। माली इंद्रियातीत है। न केवल इंद्रियातीत वरन निर्गुण भी है और न केवल निर्गुण वरन निराकार भी है।

नास्तिक ने सुना और हंस कर कहाः 'यही तो मैं पहले से ही कह रहा हूं क्योंकि तुम्हारे अदृश्य, इंद्रियातीत और निर्गुण-निराकार माली में और मेरे 'माली' में फर्क ही क्या है?'

24-2-1971

(प्रतिः स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

102/ पवित्र प्रार्थना--आंसुओं में नहाई

मेरे प्रिय,

प्रेम। रोने में संकोच न करें।

आंसुओं में नहाई प्रार्थना से पवित्र और क्या हो सकता है?

हृदय भर आता है तो आंसुओं में उस बहने दें और प्रभु चरणों तक पहुंचने दें।

शब्द नहीं कह पाते हैं जो, वही आंसुओं से निवेदित होना चाहता है।

24-2-1971
(प्रतिः श्री रतिलाल भगवान जी वसाणी, एल. सी. वायदाज हाउस, काघास चौक, न्यू इतवारी रोड, नागपुर)

103/ पीड़ा को भी उत्सव बना लेने की कला

प्यारी तृप्ता,
प्रेम। हृदय को न तो रोक ही--न दबा ही।
आनंद पूर्वक उसे प्रकट होने दे।
आंसू बहे तो उन्हें भी प्रभु चरणों में नैवेद्य बना।
यह क्षण कीमती है--और छलांग लग सकती है।
पीड़ा को भी उत्सव बना लेने की कला ही तो प्रार्थना है, पूजा है।

25-2-1971
(प्रतिः श्रीमती तृप्ता सिंगल, जालंधर)

104/ वही है, वही है--सब ओर वही है

प्यारी कुसुम,
प्रेम बांसुरी हो किसी की--गीत उस एक के ही हैं।
दिए हों किसी के--ज्योति उस एक की कही है।

इसलिए बांस की पोंगरियों को भूल--और स्मरण रख पार के संगीत को ही।
मिट्टी के दीयों को विस्मरण कर--और ध्यान दे सदा उस ज्योतिर्मय पर ही।
फिर तुझे पक्षियों के गीतों में भी भगवद्गीता सुनाई पड़ेगी।
और भोर के स्वरों में भी उपनिषद के महाकाव्य ध्वनित होते दिखाई पड़ेंगे।
फिर तू आकाश में पाएगी उसका ही विस्तार।
और पृथ्वी पर भी उसके ही पदचिह्न।
कण-कण में उसकी ही छवि।
और क्षण-क्षण में उसके ही हस्ताक्षर।
बस माध्यमों को भूल।
उपकरणों को ध्यान से हटा।
और फिर निराकार से आकारों की झीनी सी ओट अनायास ही गिर जाती है।

25-2-1971
(प्रतिः सुश्री कुसुम, लुधियाना, पंजाब)

105/ संकल्प के पंख--साधना में उड़ान

मेरे प्रिय,
प्रेम। संकल्प कठिन तो है--लेकिन असंभव नहीं।
फिर करने से ही पैदा होता है।
जैसे तैरना तैरने से ही आता है; ऐसे ही संकल्प भी संकल्प करने से ही आता है।
तैरने की कोई विधि थोड़े ही है?

जिसे तैरना नहीं आता है उसे भी पानी में छोड़ दें तो वह भी तैरता है-- यद्यपि अव्यवस्थित और आत्म-विश्वास से रहित!
अयास से तैरना सिर्फ व्यवस्थित होता है।
और व्यवस्था से आत्म-विश्वास होता है।
और व्यवस्था से आत्म-विश्वास (सेल्फ-कांफिडेंस) पैदा होता है।
संकल्प करो और हाथ-पैर फेंको--तड़फड़ाओ।
धीरे-धीरे व्यवस्था भी आएगी और आत्म-विश्वास भी।
और जब संकल्प पैदा होता है तभी साधना को पंख मिलते हैं।

25-2-1971
(प्रतिः श्री सरदारी लाल सहगल, अमृतसर, पंजाब)

106/ मुझसे मिलने की निकटतम द्वार--गहरा ध्यान

प्रिय राज,
प्रेम! नहीं, मेरी यात्राएं बंद होने से तुम्हारी अंतर्यात्रा नहीं रुकेगी।
शायद मुझे सामने न पाकर तुम मुझे भीतर खोजने लगी।
और खोजा तो वहां मैं जरूर ही मिल जाऊंगा।
और निश्चय ही उस मिलन का मूल्य ज्यादा है।
इसलिए चिंता में जरा भी न पड़ो--वरन शक्ति और संकल्प से ध्यान की गहराई में उतरो।
क्योंकि, जब मुझसे मिलने का निकटतम द्वार वही है।

25-2-71
(प्रतिः श्रीमती राज शर्मा, द्वारा--श्री सरदारी लाल शर्मा, 54614 प्रतापगली, प्रताप बाजार, अमृतसर, पंजाब)

107/ अंतः संन्यास का संकल्प

प्रिय सुमित्रा,
प्रेम। संन्यास का मन है तो मन से तो संन्यास ले ही लो।
बाह्य परिवर्तन की जब सुविधा मिले तब कर डालना।
स्वयं को तो संन्यास में ही जानो और उसी भांति जियोः
फिर जब परिवार और प्रियजनों को तुम्हारे जीवन-रूपांतरण की प्रतीति होगी तो वे भी बाधा नहीं बनेंगे।
अंततः तो वे भी तुम्हारे मंगल की ही कामना करते हैं न?

25-2-1971
(प्रतिः श्रीमती सुमित्रा जी द्वारा--श्रीब्रजभूषणदास-नारायणदास कंसारा, आनंद कुटीर, लुंसीकुई, गुजरात)

108/ क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा का रूपांतरण

प्रिय आनंद अशोक,
प्रेम। जब क्रोध आए तो दो-चार गहरी सांसें लेना और क्रोध के साक्षी बनना।
क्रोध न तो करना ही और न क्रोध से लड़ना ही।
क्रोध को देखना।
54

क्रोध के दर्शन से क्रोध की ऊर्जा (एनर्जी) क्षमा में रूपांतरित हो जाती है।
पूछोगेः क्यों?
ऐसे ही जैसे 100 डिग्री तापमान पर पानी वाष्पीभूत हो जाता है।
या, ऐसे ही जैसे हाइडरेजन और आक्सीजन के मिलने से जल निर्मित हो जाता है।

25-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद अशोक, श्री ए. एम. परदेशी, एफ/4, सर्वेंट्स क्वार्टर, दापोड़ी, पूना-12)

109/ स्वरहीन-संगीत में डूबो

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। निकट ही है जीवन-स्रोत।
उसके पूर्व ही नादब्रह्म का अवतरण होता है।
नाद में डूबो और नाद से एक हो जाओ।
इस स्वरहीन संगीत में डूबे कि स्वयं को पाया।
खोया स्वयं को कि पाया।

25-2-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

110/ समष्टि को बांट दिया ध्यान ही समाधि बन जाता है

प्रिय योग यशा,
प्रेम। ध्यान के बाद प्रार्थना किया कर कि ध्यान में मिला शांति और आनंद सब ओर बिखर जाए--सबको मिल जाए।
ध्यान करना है तुझे लेकिन फल समष्टि को बांट देना है।
तभी ध्यान समाधि बनता है।

25-2-1971
(प्रतिः मा योग यशा, आजोल, गुजरात)

111/ प्रभु द्वार पर हुई देर भी शुभ है

मेरे प्रिय,
प्रेम। ठीक समय शीघ्र ही आ जाएगा।
अवसर की प्रतीक्षा करें।
संन्यास को भीतर से तो जीने ही लगें।
बाहर का परिवर्तन तो छाया की भांति है।
वह भी आ जाएगा।
लेकिन, बाह्य-परिवर्तन के लिए रुकें नहीं।
अपने तईं तो समझ ही लें कि संन्यासी हैं।
जगत के प्रति घोषणा समय से हो जाएगी।
और निराश जरा भी न हों--प्रभु द्वार पर हुई देर भी शुभ है--क्योंकि वह धैर्य की परीक्षा हैं।

26-2-1971

(प्रतिः डॉ . बी . जी . अवस्थी , अब स्वामी प्रेम विजय , पूर्वी धमापुर , जबलपुर)

112/ समझ (अंडरस्टैंडिंग) ही मुक्ति है

प्रिय सुशीला ,
प्रेम। समर्पण -भाव से जीएं तो चरण स्वतः ही प्रभु -मंदिर तक पहुंच जाते हैं।
जीवन अत्यंत सहज -यात्रा है।
ऐसे ही जैसे कि नदियां बहती हैं और सागर तक पहुंच जाती हैं।
या कि फूल खिलते हैं।
या कि पक्षी गीत गाते हैं।
लेकिन , मनुष्य की अस्मिता (ईगो) सहज को कठिन कर देती है और सरल को जटिल बना देती है।
अहंकार एकमात्र असत्य है।
और केवल उसके आस-पास ही उलझाव है और गांठें हैं।
और यह समझ में आई बात कि छुटकारा है।
क्योंकि समझ (अंडरस्टैंडिंग) ही मुक्ति है।

26-2-1971
(प्रतिः श्रीमती सुशीला देवी , म. नं . 536614 डाकखाने के पास , पंजाबी मोहल्ला , अंबाला छावनी , पंजाब)

113/ संन्यास --रूपांतरण की कमियां

प्रिय विजय मूर्ति ,
प्रेम। संन्यास की अलकेमी (एलकेमी) ऐसी ही है।
निर्णय लेते ही जीवन रूपांतरित होने लगता है।
निर्णय , (डिसीजन) साधारण घटना नहीं है।
क्योंकि , संन्यास का निर्णय संकल्प भी है और समर्पण भी।
अब तुम वही नहीं हो जो कि संन्यास के पूर्व थे !
इसलिए, पुरानी आदतें अपने आप बिखर गई हैं तो आश्चर्य नहीं है।
असल में उनके संगठन का पुराना केंद्र ही जब टूट गया है तो उसके बचे रहने का कोई भी उपाय नहीं है।

26-2-1971
(प्रतिः स्वामी विजय मूर्ति , 1759 लक्ष्मी रोड , दूसरा माला , पूना)

114/ उसका होना ही उसका ज्ञान भी है

मेरे प्रिय ,
प्रेम। भूकंप होता है तो कैसे जानते हैं ?
क्या किसी से पूछ कर ?
या किसी किताब से लक्षण मिला कर ?
ऐसे ही जब अंतस में विस्फोट (एक्सपलोजन) होता है तब उसे भी सीधा (इमिडिएट) ही जान लिया जाता है।
उसका होना ही उसका ज्ञान भी है।

26-2-1971

(प्रतिः श्री प्रेमसिंह, ग्राम एवं पो. मानो लंगा, जि. कपूरथला, पंजाब)

115/ जागे बिना सत्य से परिचय नहीं

मेरे प्रिय,
प्रेम। आंखें खोले बिना सूर्य से पहचान कैसे हो?
जागे बिना तो सत्य से परिचय नहीं हो सकता है?
और उनके लिए क्या कहा जाए जो कि आंखें बंद किए हो प्रकाश के संबंध में निर्णय देते हैं?
प्रभु की तुम पर अनुकंपा है कि तुम ऐसी भूल से बच गए।
उसका अनुग्रह मानो और आगे भी द्वार हैं जिन्हें खोलो--और आगे भी मार्ग है जिन पर यात्रा करो--और आगे भी मंजिलें हैं जिन तक पहुंचो।
और मैं जानता हूं कि तुम अब आगे बढ़ सकोगे क्योंकि पहली और सबसे कठिन बाधा टूट गई है।
26-2-1971
(प्रतिः श्री सुरेश एन. जानी, 1 मुकुंद कुंद सोसायटी, नारायणपुरा, अहमदाबाद -13)

116/ साधना को तो सिद्धि तक पहुंचाना ही है

प्यारी धर्म सरस्वती,
प्रेम। संन्यास के संबंध में पुरानी धारणाओं के कारण प्रियजनों को समझने में कठिनाई होती है; जो कि स्वाभाविक है।
लेकिन उससे चिंता में न पड़।
हां, उन्हें संन्यास की नई दृष्टि को सादर समझने की कोशिश जरूर कर।
जो तुझे प्रेम करते हैं, वे निश्चय ही मेरी स्थिति को समझ सकेंगे।
और तू उनकी शुभकामनाएं भी पा सकेगी।
संकल्प को तो पूरा करना है।
साधना को तो सिद्धि तक पहुंचाना ही है।
निश्चय ही मार्ग में अनेक बाधाएं आएंगी उन्हें भी साधना में सहयोगी बनाना है।
प्रभु के प्रति समग्र समर्पण से आगे बढ़ और सब चिंताएं उस पर ही छोड़ दे।

26-2-1971
(प्रतिः मा धर्म सरस्वती, रूम नं. 24, एम. ई. एस. कालेज हॉस्टल, कर्वे रोड, पूना -4)

117/ सदा स्मरण रखें--जीवन है एक खेल

मेरे प्रिय,
प्रेम। जीवन को गंभीरता से लिया कि कठिनाई में पड़े।
जीवन है एक खेल (गेम)।
इसे सदा स्मरण रखें तो फिर और कुछ भी स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं है।
26-2-1971
(प्रतिः श्री प्रेमकुमार गांधी, गांधी स्टोर, चंद्रपुर, महाराष्ट्र)

118/ साहस--अज्ञात में छलांग का

प्रिय चित्रा,
प्रेम। भय के अतिरिक्त और किसी बात से भय न कर।
मैं तेरी आत्म-स्थिति भलीभांति जानता हूं इसलिए ध्यान में तू साहस से आगे बढ़।
साहस की कमी ही तेरे लिए एकमात्र बाधा है।
ध्यान में सब भूल और केवल ध्यान को ही याद रख।
शक्ति पूरी लगा--जरा भी अपने को मत बचा।
ध्यान है अज्ञात में छलांग।
इसलिए बहुत हिसाबी-किताबी मन उस अज्ञात में उतरने के हर्षोन्माद से वंचित ही रह जाता है।

26-2-1971
(प्रतिः सुश्री चित्रा जानी, 13, सुभाष नगर, अहमदाबाद-4)

119/ जिन खोजा तिन पाइयां

मेरे प्रिय,
प्रेम। तुमने पूछा है कि ‘अपने करने से क्या होता है--वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है।’ और, ‘खुदी को कर बुलंद इतना कि खुदा खुद बंदे से पूछे कि बता तेरी रजा क्या है? --इन दोनों में से कौन सी दृष्टि ठीक है?
मेरे देखे--दूसरे सूत्र को साधो तो पहले सूत्र की सिद्धि होती है।
दूसरा सूत्र है साधकों के लिए और पहला है सिद्धों की अभिव्यक्ति।
और जिसने इससे उलटा समझा उसका शीर्षासन लग जाता है।
पहले को बिल्कुल भूल जाओ।
चलो दूसरे पर और अंततः तुम पहले पर पहुंच जाओगे।
दोनों सूत्रों में न तो विरोध ही है और न चुनाव ही।
उन्हें विकल्प मत बनाना और न ही उनमें से चुनाव ही करना।

26-2-1971
(प्रतिः श्री इंद्रशर्मा, गोकुला पेठ, नागपुर, महाराष्ट्र)

120/ अथक श्रम--और परीक्षा धैर्य की

प्यारी लीला,
प्रेम। हो सकेगा आत्म-साक्षात्कार।
कठिन तो है अवश्य।
पर असंभव नहीं।
चाह की गहराई पर सब कुछ निर्भर है।
और मैं जानता हूं कि तेरी चाह गहरी है।
ध्यान को बढ़ाती चल।
अथक श्रम करना है।
अज्ञात की अभीप्सा अथक श्रम मांगती है।
फल शीघ्र आता हुआ दिखाई न भी पड़े तो भी धैर्य रखना है।
धैर्य परीक्षा है।

26-2-1971
(प्रतिः सुश्री लीला जवेरीलाल, जवेरी निवास, कोचीन-2)

121/ जीवन को उत्सव बना लेने की कला संन्यास है

प्रिय भक्ति वेदांत,
प्रेम। प्रभु से उसके समस्त रूपों में प्रेम ही प्रार्थना है।
जहां देखो--उसे ही देखो।
जो सुनो--उसमें उसे ही सुनो।
फिर जीवन--मात्र जीना ही उत्सव हो जाता है।
जीवन को उत्सव--बेशर्त उत्सव बना लेने की कला ही संन्यास है।

26-2-1971
(प्रतिः स्वामी भक्ति वेदांत, अहमदाबाद)

122/ प्रभु-पथ से लौटना नहीं है

प्रिय राधा,
प्रेम। संघर्ष करना ही होता है।
लेकिन, आनंद से कर।
प्रभु को सुमरती हुई कर।
राह निकल ही आएगी।
जहां संकल्प है वहां शक्ति से अनजाने स्रोत उपलब्ध हो जाते हैं।
इतना ही स्मरण रख कि प्रभु पथ से लौटना नहीं है।

26-2-1971
(प्रतिः मा योग राधा, विश्वनीड, आजोल, गुजरात)

123/ स्वयं को खोकर ही पा सकोगे सर्व को

मेरे प्रिय,
प्रेम। घबड़ाएं यदि शून्य में खोने से तो स्वयं को फिर न पा सकोगे।
डरे यदि मिटने से तो फिर अमृत से मिलन नहीं है।
आह! कमल के पत्ते पर सागर में गिरने से भयभीत बूंद!
उस बेचारी को क्या पता कि सागर में खोना--खोना नहीं, सागर होना है।

26-2-1971
(प्रतिः श्री महेंद्र प्रसाद जायसवाल, ईशीपुर, जिला-भागलपुर, बिहार)

124/ शून्य में नृत्य और स्वरहीन संगीत

मेरे प्रिय,
प्रेम। ऐसे ही जीओ कि अस्तित्व का कण-कण आंदोलित करे।
ऐसे ही हो जाओ कि अंततः तुम न बचो और मात्र आंदोलन ही बचें।
शून्य में हो उनका नृत्य।
और स्वरहीन हो उनका संगीत।
फिर ही समाधि है।

26-2-1971

(प्रतिः श्री रामकृष्ण कथ्रेचा, राजकोट-2)

125/ ‘न-करना’ है करने की अंतिम अवस्था

मेरे प्रिय,
प्रेम। छोड़ दो--सब छोड़ दो प्रभु पर।
छोड़ कर भी तो देखो।
छोड़ने का अलौकिक स्वाद भी तो लो?
किया बहुत--और पाया क्या?
अब न करके भी देखो।
‘न करना’ मनुष्य के ‘करने’ की अंतिम अवस्था है।
26-2-1971
(प्रतिः श्रीयुत पूरनचंद, फाइन आर्ट्स प्रेस, प्रताप बाजार, अमृतसर, पंजाब)

126/ अहंकार की सीमा

प्रिय गीत गोविंद,
प्रेम। अहंकार का सुरक्षागत मूल्य (सरवाइवल वैल्यू) है।
वह है तो अकारण नहीं है।
लेकिन फिर एक सीमा पर वही बाधा भी बन जाता है।
सीढ़ी से चढ़ना पड़ता है और फिर उतरना भी।
सीढ़ी पर न चढ़े भी नहीं चलेगा और सीढ़ी को ही मंजिल माना तो भी आत्मघात है।

4-3-1971
(प्रतिः स्वामी गीत गोविंद, अहमदाबाद-9)

127/ स्वयं को समझो

प्रिय गीत गोविंद,
प्रेम। स्वयं को स्वीकार करने का प्रयास मत करो।
क्योंकि, वह भी गहरे में अस्वीकार की ही घोषणा है।
स्वयं को समझो भर!
और अंततः स्वयं की समझ ही स्वयं की स्वीकृति बन जाती है।

4-3-1971
(प्रतिः स्वामी गीत गोविंद, अहमदाबाद-9)

128/ एकमात्र यात्रा--अंतस की

प्रिय योग उमा,
प्रेम। छोड़ना कुछ भी नहीं है सिवाय अस्मिता के।
वही है स्वप्नों की जननी।
या संसार की।
जाना भी कहीं नहीं है सिवाय अंतस के।
क्योंकि, उसके अतिरिक्त कहीं भी जाओ, अंधकार है।

या संसार है।

5-3-1971
(प्रतिः मा योग उमा, पूना)

129/ पर करो --कुछ तो करो

प्यारी विमल,
प्रेम। सभी मार्ग उसी के हैं।
सभी द्वार उसी के द्वार हैं।
ज्ञान हो, कि कर्म, कि भक्ति।
भेद कोई नहीं है।
पर करो --कुछ तो करो।
सोचते रहने से ही तो नहीं चलेगा न?

5-3-1971
(प्रतिः श्रीमती विमला सिंहल, अब मा योग विभूति, रतन निवास, बं. नं. 35 नीमच कैंट, नीमच, म. प्र.)

130/ पहले समझो ही

मेरे प्रिय,
प्रेम। करने की बहुत जल्दी न करो।
पहले समझो ही।
पूरी समझ हो तो करना स्वयं ही उससे निकलता है।
और समझ से सहज ही करना न निकले तो समझो कि समझ ही पूरी नहीं है।
5-3-1971
(प्रतिः श्री शंकर बी. रामी, अहमदाबाद)

131/ अति सूक्ष्म हैं --अहंकार के रास्ते

प्यारी मृणाल,
प्रेम। अहंकार के रास्ते अति-सूक्ष्म है।
और उलझे हुए भी।
विनम्रता की आड़ में भी वह निवास बना लेता है।
वह है तो किसी भी रूप में प्रकट होता है।
तप में भी --तपश्चर्या में भी।
दान में भी --धर्म में भी।
प्रेम में भी --प्रार्थना में भी।
राष्ट्र, देश, धर्म --कोई भी उसका रथ बन सकता है।
वह है तो कहीं भी होगा ही।
गुप्त-अंधेरे में --अचेतन में सक्रिय।
इसलिए, क्रियाओं को मिटा कर उसे नहीं मिटाया जा सकता है।
वह न हो इसके लिए सीधा आक्रमण आवश्यक है।
सीधा आक्रमण अर्थात अहंकार का आमना-सामना (एनकाउंटर)।
और मजा यह है कि जो किसी भी भांति नहीं मिटता है वह आमने-सामने पाया ही नहीं जाता है।
और जब वह नहीं है तो कहीं भी नहीं है।
सिंहासनों पर भी नहीं।

अन्यथा वह शहीदों की सूलियों पर भी है।

4-3-1971
(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, पूना)

132/ अपनी चिंता पर्याप्त है

मेरे प्रिय,
प्रेम। संसार की चिंता न करो।
अपनी ही चिंता क्या पर्याप्त नहीं है?
6-3-1971
(प्रतिः श्री शंकर बी. रामी, डीलक्स गारमेंट, रतन पोल, जवेरीवाड नाका, अहमदाबाद--1)

133/ फूल, कांटे और साधना

मेरे प्रिय,
प्रेम। निराशा का कोई कारण नहीं है।
साधना के मार्ग पर कांटे हैं जरूर--लेकिन वे सब फूलों के रक्षक हैं।
और जब भी कांटे मिलना शुरू हों तो जानना कि फूल निकट हैं।

6-3-1971
(प्रतिः स्वामी विजय मूर्ति, पूना-2)

134/ जीवन है एक चुनौती

प्रिय प्रेम निवेदिता,
प्रेम। निश्चय ही जीवन है एक चुनौती।
और जो उसे स्वीकार नहीं करते वे व्यर्थ ही जीते हैं। यंत्रवत जीना जीना नहीं है।
6-3-1971
(प्रतिः मा प्रेम निवेदिता, घाटकोपर, बंबई)

135/ छलांग--बाहर--शरीर के, संसार के, समय के

प्रिय धर्म सरस्वती,
प्रेम। ध्यान में शरीर झूमता है तो भय न करना।
वरन उसे आनंद से सहयोग देना।
शरीर के साथ झूमा।
मन को भी झूमन दो।
और आत्मा को भी।
झूमना नृत्य बन जाएगा।
और नृत्य की अति में ही छलांग है।
शरीर के बाहर--संसार के बाहर--समय के बाहर।
6-3-1971
(प्रतिः मा धर्म सरस्वती, पूना-4)

136/ स्वयं की खोज ही संन्यास है

प्रिय योग उमा,
प्रेम। भूलो बाहर को और डूबो प्रभु में।
बाहर दुख है।
और नरक है।
भीतर, और केवल भीतर ही सुख है।
या, स्वर्ग है।
खोजो स्वयं से ही उस बिंदु को जिसके कि पार और भीतर नहीं है।
यही खोज संन्यास है।
संसार में परिस्थिति की बदलाहट संन्यास नहीं है।
परिस्थिति नहीं--मनःस्थिति बदलनी है।

6-3-1971
(प्रतिः मा योग उमा, पूना)

137/ पागल होने की विधि है यह--लेकिन प्रज्ञा में

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। जो तुम्हारी कल्पना में नहीं था, वह हो रहा है न? तुम्हारा कसूर नहीं--आदमी की कल्पना ही बहुत गरीब है।
और फिर कल्पना भी तो ज्ञात (नोन) की ही हो सकती है?
अज्ञात (अननोन) की कल्पना का उपाय भी तो नहीं है?
और सत्य अज्ञात है।
और सुंदर अज्ञात है।
और शिव अज्ञात है।
पर अब तुम ज्ञात की परिधि से अज्ञात के शून्य में कूद रहे हो।
मरने की तैयारी है यह--लेकिन अमृत में!
पागल होने की विधि है यह--लेकिन प्रज्ञा में।

6-3-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

138/ प्रभु-प्रकाश की पहली किरण

प्रिय नयना,
प्रेम। तेरे अनुभव से अति आनंदित हूं।
द्वार खुल रहा है और प्रभु-प्रकाश की पहली झलक तेरे प्राणों में उतरी है।
अब पूरी शक्ति से श्रम कर।
लोहा जब गर्म हो तभी चोट उपयोगी है।

6-3-1971
(प्रतिः कुमारी नयना, द्वारा--श्री, मनुभाई एन. बोरा, 5, संगम सोसायटी, सुरेंद्रनगर, गुज.)

63

139/ अस्वस्थता को भी अवसर बना लो

प्यारी मधुरी,
प्रेम। जानता हूं कि शरीर तुम्हारा स्वस्थ नहीं हैं।
उसकी सेवा करना--लेकिन चिंता नहीं।
वरन उसके अस्वास्थ्य में भी अंतरतम में स्वस्थ रहना।
स्वयं को शरीर से भिन्न जानो तो यह अनुभव कठिन नहीं है।
और इस भांति अस्वास्थ्य को भी अवसर बनाया जा सकता है।
उसे अवसर बना ही लो।
जरा सी बुद्धिमत्ता और अभिशाप वरदान हो जाते हैं।

6-3-1971
(प्रतिः सुश्री मधुरी, द्वारा--श्री पुष्करभाई गोकाणी, द्वारका)

140/ दिन-रात की धूप-छांव में स्वयं को भूल मत जाना

प्यारी जयश्री,
प्रेम। दिन-रात की धूप-छांव में स्वयं को भूल मत जाना।
समय के चक्र में समयातीत की स्मृति ही आनंद का द्वार है।
6-3-1971
(प्रतिः सुश्री जयश्री, द्वारा--श्री पुष्कर भाई गोकाणी, जवाहर रोड, द्वारका, गुजरात)

141/ नियति का बोध परम आनंद है

प्रिय गीत गोविंद,
प्रेम। कुछ बनना चाहा कि भटके।
भटकने की वह रामबाण औषधि है।
जो हो, बस वही हो सकते हो।
या कि जो हो सकते हो, वही हो।
नियति का बोध परम आनंद है।

6-3-1971
(प्रतिः स्वामी गीत गोविंद, अहमदाबाद-9)

142/ स्वनिर्मित कारागृहों में कैद आदमी

प्यारी कुसुम,
प्रेम। सूर्य है सदा द्वार पर।
पर आदमी की आंखें हैं बंद।
आकाश सी स्वतंत्रता है चारों ओर।
पर आदमी है कि स्वनिर्मित कारागृहों में कैद है।
पंख है पास में कि उड़ान भरी जा सके तारों तक।
पर अज्ञात में स्वयं को छोड़ने का साहस सुप्त है।

7-3-1971
(प्रतिः श्रीमती कुसुम, लुधियाना)

143/ समय रहते जाग जाना आवश्यक है

प्यारी नीलम,

प्रेम। पानी पर खींची लकीरें जैसे खिंच भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं; ऐसा ही क्षणभंगुर यह जीवन है।

श्वासों की गति की भांति।

आई श्वास और गई--ऐसा ही यह जीवन है।

और जो इस आते-जाते में ही चुक जाता है; वह स्वयं को अकारण ही खो देता है।

समय रहते जाग जाना आवश्यक है।

7-3-1971

(प्रतिः सुश्री नीलम, लुधियाना)

144/ अमूर्च्छा का आक्रमण--मूर्च्छा पर

प्यारी मृणाल,

प्रेम। निश्चय ही फूलों की सुवास सा घेर लूंगा तुझे।

पीछा करूंगा तेरा।

स्वप्नों में भी।

क्योंकि तुझे नींद से जगाना जो है?

7-3-1971

(प्रतिः सौ. मृणाल जोशी, पूना)

145/ कुछ भी हो--ध्यान को नहीं रोकना है

प्रिय अगेह भारती,

प्रेम। ध्यान में और भी शक्ति लगाओ।

ध्यान के अतिरिक्त शेष समय में भी ध्यान की स्मृति (रिमेंबरिंग) बनाए रखो।

जब भी स्मरण आए--क्षण-भर को तत्काल भीतर डुबकी ले लो।

मस्तिष्क में शीतलता और भी बढ़ेगी।

उससे घबड़ाना मत--बिल्कुल बर्फ जमी हुई मालूम होने लगे तो भी नहीं।

रीढ़ में संवेदना गहरी होगी और कभी-कभी अनायास कहीं-कहीं दर्द भी उभरेगा।

उसे साक्षी-भाव से देखते रहना है।

वह आएगा और अपना काम करके बिदा हो जाएगा।

नये चक्र सक्रिय होते हैं तो दर्द होता ही है।

और कुछ भी हो तो ध्यान को नहीं रोकना है।

जो भी ध्यान से पैदा होता है, वह ध्यान से ही विदा हो जाता है।

7-3-1971

(प्रतिः स्वामी अगेह भारती, जबलपुर)

146/ देखो स्थिति और हो जाने दो समर्पण

प्रिय अगेह भारती,

प्रेम। क्या समर्पण भी सोच-समझ कर करोगे?
सोच-समझ की व्यर्थता के बोध से ही तो समर्पण फलित होता है।
और क्या यह भी पूछोगे कि समर्पण की विधि क्या है?
जहां तक विधियों की गति है, वहां तक तो समर्पण (सरेंडर) नहीं ही है।
और समर्पण भी क्या तुम करोगे?
जहां तक तुम हो वहां तक समर्पण कहां?
समर्पण क्रिया भी तो नहीं है--भाषा को छोड़ कर।
समर्पण तो समस्त क्रियाओं की कब्र पर खिला फूल है।
समझो नहीं।
करो भी नहीं।
देखो स्थिति--और हो जाने दो (लेट-गो)।
समर्पण को रोको मर मत--बस हो जाने दो।
जैसे सोते हो रात--बस ऐसे ही।
क्या है विधि सोने की?
क्या है क्रिया?
क्या करते हो तुम?
थकते हो और पड़ जाते हो--अचेतन के हाथों में।
ऐसे ही थक गए हो अस्मिता से तो अब छोड़ दो स्वयं को अज्ञात के हाथों में।
छोड़ दो बस--चुपचाप।
ऐसे कि आवाज भी न हो।

8-3-1971
(प्रतिः स्वामी अगेह भारती, जबलपुर)

147/ नाचो--गाओ और प्रभु की धुन में डूबो

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम। नाचो--गाओ और प्रभु की धुन में डूबो।
दूसरों को तो उन्माद ही लगेगा।
लेकिन अब तुम्हारे लिए यही मंगलदायी ही कि आनंद को बांटो।
क्योंकि आनंद न बटे तो प्राणों पर भारी हो जाता है।
वह जहां से आता है वहीं लौटा दो।
निश्चय ही बांटने से वह और बढ़ेगा--लौटाने से वह और लौटेगा।
यही नियम है।

7-3-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

148/ आनंद है महामंत्र

प्यारे कचु,
प्रेम। भय से नहीं--अभय से होती है अनंत की यात्रा।
संकोच से नहीं--विस्तार से होता है असीम से मिलन।
और उदास चरण नहीं--आनंद से थिरकते चरण ही प्रभु के मंदिर तक पहुंचते हैं।
आनंद हैं महामंत्र।
एक-एक पल आनंद को स्मरण रखो।
एक-एक पल आनंद को जियो।
नाचो आनंद से।

गाओ आनंद से।
जीवन को बनाओ एक उत्सव।
एक अहोभाग्य।
मेरी दृष्टि मेंः आनंद ही धर्म है।

18-4-1971
(प्रतिः श्री कचु, (श्री भालचंद्र तुरखिया, पूना-2)

149/ जीवन नृत्य है

प्यारी कुसुम,
प्रेम। आकाश से थोड़ा तालमेल बढ़ा।
आंखों को विराट को पीने दे।
दिन हो या रात--जब भी मौका मिले आकाश पर ध्यान कर।
आकाश को उतरने दे हृदय में।
शीघ्र ही बीच से परदा उठने लगेगा।
भीतर और बाहर का आकाश आलिंगन करने लगेगा।
स्वयं के मिटने में इससे सहायता मिलेगी।
अहं के विसर्जन में इसमें मार्ग बनेगा।
और यदि अनायास ही आकाश पर ध्यान करते करते तन-तन नृत्य को आतुर हो उठे
तो स्वयं को रोकना नहीं--नाचना।
हृदयपूर्वक नाचना।
पागल होकर नाचना।
उस नृत्य से जीवन रूपांतरण की अनूठी कुंजी हाथ लग जाती है।
क्योंकि नृत्य ही है अस्तित्व।
अस्तित्व के होने का ढंग ही नृत्यमय है।
अणु-परमाणु नृत्य में लीन हैं--ऊर्जा अनंत रूपों में नृत्य कर रही है।
जीवन नृत्य है।

13-3-1971
(प्रतिः सुश्री कुसुम, लुधियाना, पंजाब)

150/ पद घुंघरू बांध

प्यारी मीरा,
प्रेम। शक्ति जागती है तो सृजन मांगती है।
और सृजनात्मक (क्रिएटिव) द्वार न मिले तो पीड़ा देती है।
निश्चय ही वह पीड़ा प्रसव-पीड़ा से गुजर रही है।
मीठी है इसलिए छोड़ भी नहीं पाती और पीड़ा है इसलिए छोड़ना भी चाहती है।
पर जो अब नहीं हो सकता है उसे करने में मत पड़।
जीवन में पीछे लौटना असंभव है।
और अहितकर भी।
आगे बढ़--मार्ग अभी बहुत शेष है।
मुकाम को मंजिल न समझ।
शक्ति जाग रही है तो उसे अभिव्यक्त कर।
गीत उठ रहा है तो उसे गा और आकाश को समर्पित कर।
बांध पैरों में घुंघरू और नाच।
जीवन को उत्सव बना।
द्वार-द्वार प्रभु की खबर ले जा।
प्राणों में जो है उसे बाहर बहने दे।

सरिता सागर से मिले बिना कब संतुष्ट हुई है। 8-3-1971
(प्रतिः मा योग मीरा, जूनागढ़)